कल्पतरु, दिल्ली-३२

पहली बारिश की छिटकती बूंदे

शंकरदयाल सिंह

PAHALI BARISH KI CHHITAKTI BUNDEN

Shankar Dayal Singh

Rs 20 00

मूल्य बीस रुपये / प्रथम संस्करण, १९८५ / प्रकाशक कल्पतरु, ३/११४, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली ३२ / मुद्रक रूबी प्रिंटिंग सर्विस, पूर्वी रोहतासनगर, शाहदरा, दिल्ली ३२

साहित्य और संस्कृति,
कला और धार्मिक
सद्भाव

डॉ०

न्यायावरी के भी अपने ही मजे हैं।

आदमी जितना घूम फिरकर सीख सकता है और आनन्दविभोर हो सकता है, उतना लिख-पढ़कर नही।

तभी तो भारतीय ऋषियो, मुनियो और सतो फकीरो की परम्परा ही रही कि बहता पानी निमल की तरह जहा ठाव, वही गाव।

क्या आनन्द आता है उस समय जब सात समुन्दर पार किसी बड़े से पाक मे आप घूम रहे हो और कोई तरुणी हौले से आकर आपको चूम ले—आप हिन्दुस्तान से आये हैं, हिन्दुस्तान से मैं हिन्दुस्तान को प्यार करती हू।

गाधी के देश से, गाधी मैंने अभी-अभी उस तसवीर को दो बार देखा है। किसी अनजान विदशी भूमि मे यह सुनकर आपको रोमाच आ जायेगा।

कोई सहयात्री आपको पकड लेगा—"मैं इडिया गया हू, बहुत अच्छा दश है। अशोका होटल मे ठहरा हू। बडे-बडे कमरे और कितना अच्छा होटल है।

'कोई हिन्दुस्तानी गाना सुनाइये।' कोई जिद करने लगेगा।

इसके विपरीत भी न जाने कितने सुख दुख के अनुभव देश और विदेश की भूमि पर आपको होंगे, जिन्हे आप भूल नही सकते और उन्ही ऊहापोहा का मिला-जुला गुच्छा है यह—'पहली बारिश की छिटकती बूदें,' जिसकी अधिकाश रचनाए देश की प्रतिनिधि पत्र पत्रिकाओ मे आती रही हैं।

यायावरी लेखन कोई विधा न होकर, अनुभूति है।

—शकरदयाल सिंह

कामता सदन,
बोरिंग रोड, पटना १

क्रम

पहली बारिश की छिटकती बूंदें

देश विदेश के अनेक हिस्सों में घूमने फिरने के बाद भी ऐसा लगता है मानो अभी तो दुनिया के मानचित्र का सौवां हिस्सा भी नहीं देख पाया हूं। तब गणेशजी से समान संतोष करना पड़ता है एक वक्त के बीच में अपने आपको यायावर। भला या बुरा, अपने-आपको एक यायावर मानता रहा हूं। यायावर, जिसका शुद्ध सात्विक शाब्दीय अर्थ होता है—भ्रमण घूमने वाला, खानाबदोश, जिसका कोई नियत स्थान न हो। अपने-आपको खानाबदोश की स्थिति में नहीं रख पाता, लेकिन उसके बाद के दोनों अर्थ मेरे ऊपर पूर्णतया सटीक उतरते हैं। और यही कारण है जो कई बार पूरब की गाड़ी लेट हो जाने पर पश्चिम की गाड़ी सामने पाकर उसी में बैठ गया हूं, तथा कई बार बम्बई के लिए रवाना होकर अनायास बनारस ही उतर गया हूं।

यात्राओं का, यायावरी का, पर्यटन का, भ्रमण का अपना ही आनन्द है। और यदि कोई बिना किसी कार्यक्रम के, बिना किसी प्रोग्राम-पत्रा के कहीं के लिए निकल जाये तो उसका भी अपना ही महत्त्व और मजा है।

अक्सर ऐसा ही किया है मैंने।

और यही कारण है कि विगत पन्द्रह वर्षों में दस बार विदेश हो आया तथा विगत पच्चीस वर्षों के अन्तर्गत महीने में कम-से-कम पन्द्रह दिन देश के विभिन्न हिस्सों में मैं यात्रा पर होता हूं। और इन यात्राओं में दर्जनों बार ठगा गया हूं और दर्जनों बार मूर्ख बना हूं, तो दर्जनों बार दूसरों को भी मूर्ख बनाया है।

याद करता हूं अपने मूर्ख बनने की बात तो हंसी भी छूटती है और पसीना भी छूटता है। सोवियत संघ की अपनी प्रथम यात्रा में दस दिना

तक लगातार साथ रहने पर भी अपनी दुभाषिया लड़की के बारे में यह नहीं जान पाया कि यह एक शब्द भी हिन्दी जानती है। कारण यह था कि वह हमारे साथ अंग्रेजी रूसी दुभाषिया थी और मेरे प्रतिनिधि मंडल के नेता जस्टिस कृष्णा अय्यर तथा मेरे बीच वह थी और एक दिन मास्को की सबसे बड़ी डिपार्टमेंटल स्टोर 'गुम' का घंटों निरीक्षण करने के बाद जब हम बाहर निकलने लगे तब उसने अंग्रेजी में हमसे पूछा—डू यू वांट एनीथिंग मोर ? '(क्या आप कुछ और चाहते हैं ?)' उसके प्रश्न के उत्तर में मैंने उससे उर्दू का एक शेर कहा—

'सौदे के लिए बरसेर बाजार हुए हम
हाथ उनके बिके, जिनके खरीदार हुए हम।'

कहने के साथ ही जब मैं इसका अंग्रेजी तरजुमा करने लगा, तो वह बोली—'वेट प्लीज'—और फिर एक मिनट में कहा—

'दुनिया में हूं, दुनिया का तलबगार नहीं हूं
बाजार से गुजरा हूं, खरीदार नहीं हूं।'

मैं तो हक्का-बक्का। भला यह सेर का जवाब सवा सेर। पूछा—'आप हिन्दी भी जानती हैं ?'

तो वह शुद्ध हिन्दी में बोली—'हिन्दी भाषा का ज्ञान नहीं होता तो मैं फिर जवाब कैसे देती ?'

'लेकिन आप तो विगत दस दिनों से केवल अंग्रेजी ही हमसे बोलती रहीं ?'

'जी हां, आपने अंग्रेजी दुभाषिया की मांग की थी, हिन्दी की नहीं।'

मैंने अपनी झेंप मिटाने के लिए इस पर कहा—'चलिए अच्छा हुआ कि जस्टिस कृष्णा अय्यर जी हिन्दी नहीं जानते हैं, नहीं तो मैं तो न जाने कितनी बातें आपके बारे में ही कर डालता।' इस पर हम दोनों हंस पड़े।

इसी प्रकार एक बार लंदन में 'ब्रिटिश म्युजियम' देखते समय मुझे मुंहकी खानी पड़ी। वहां भारतीय कक्ष में रखी बेशुमार चीजों को देखकर मेरे साथ के बलिया निवासी मित्र ने मुझसे भोजपुरी में कहा—'इ सब सारन हमनिये किहा से लूटके लहले बाड़े।' (ये सारी चीजें हम ही लोगों

साइकिल बना लेते हैं, वैसे ही इसकी कार होगी। अतः मैंने पूछा—कहा है आपकी गाड़ी ?

इस पर वह खिड़की के शीशे मे हाथ दिखाकर बोली—यहां तो सबसे अधिक दिक्कत पार्किंग की है। इसलिए मैं अपनी गाड़ी करीब एक किलोमीटर पर लगाकर आयी हू। वैसे उसका मॉडल यह है।

मैं आश्चर्य के सातवें आसमान पर। वही लम्बी-सी गाड़ी थी उसकी जो अमूमन हमारे यहा के गवनरों के पास होती है।

यह समृद्धि, यह शान शौकत देखकर मुझे तो यही भान हुआ कि कहा मैं फसा हू एम० पी० गिरी मे, मैं भी इसी प्राइवेट-पाइन मे क्यों न लग जाऊ।

लेकिन यायावरी के मजे इग्लड, अमेरिका, रूस, जापान, फ्रास, स्विटजरलैंड आदि बड़े और समृद्ध देशो म कुछ और हैं तथा छोटे और मध्यम देशो शहरो मे कुछ और ही। इस क्रम मे बुलगारिया, हगरी, थाईलैंड, दक्षिण कोरिया, हागकाग, सिंगापुर, फिलिपिन्स मलेसिया, रूमानिया अलजीरिया, डेनमार्क आदि की स्मृतियो की कुनकुनाहट कुछ और ही है।

दुनिया म मनीला और बैंकाक—ये दो इस समय मध्यम श्रेणी के सबसे अधिक दिलफेंक शहर मेरी समझ मे हैं जहा आप अकेले गये तो गये। एक तो इन दोनो स्थानो मे नाईट क्लबो, बारो तथा सस्ते रेस्टोरेंटो की भरमार है और दूसरी ओर हुस्न की जितनी खुली तिजारत इस समय फिलिपिन्स और थाईलैंड म है उतनी बहुत कम जगहो म। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय समुद्र के इन हिस्सो को अमरिकी सैनिको ने अपना मुख्य अड्डा बनाया था और जहा अमरिकन सैनिक अड्डा होगा पैसा पानी की तरह बहाया जायेगा। वहा आदमी की आदमियत भी बिकती रहेगी। तभी तो मनीला के रिजाल पार्क या किसी होटल मे बैठना-ठहरना मेरे जसे मुसाफिर के लिए भयानक त्रासदायक हो गया। जिस तरह रेस्ट्राओ मे खाने पीने के लिए मेनू देकर आर्डर लिया जाता है वैसे ही मनीला और बैंकाक मे टैक्सी ड्राइवरो, होटलो के बैयरो, पार्कों मे घूमने वाली कुटनिओ के पास विभिन्न तसवीरो के एलबम होते हैं, जिसे वे बिना झिझक किसी भी पयटक के सामने पानी के गिलास के समान पेश

ढोलक झाल मजीरे की तानो पर सुना, आखो की सुरमई लाली और कला सस्कार की ऊची उडान पेरिस तथा रोम की सडको पर देखने को मिली, उद्योग तथा धर्म दोनो का मणि काचन योग जापान तथा दक्षिण कोरिया मे जाकर महसूस हुआ लोकतत्र अथवा प्रजातत्र का गरुड ध्वज इग्लैड तथा आस्ट्रेलिया मे फहरता देखकर बौद्धिक मन को शात-सतोष हुआ, बुडापेस्ट और साफिया की अपनी एक अलमस्त दुनिया मे गेहू और गुलाब दोनो के दर्शन हुए और इडोनेशिया तथा बर्मा का दिग्दर्शन कही-न-कही प्राचीन भारत की याद दिला गया।

वसे लदन की शाम, पेरिस की रात और न्यूयार्क की सुबह का भी अपना ही अदाज है। और यह सब देखकर मेरे खानाबदोश मन को ऐसा लगता रहा है कि फूल जैसे देखने की नही सूघने की चीज है, वैसे ही दुनिया मानचित्र पर निहारने की नही वरन अपनी आखो मे भर लेने की एक बुनियादी तासीर है।

तभी तो कई चीजें भुलाये नही भूलती हैं, और बार-बार मुझे ऐसा लगता है मानो शराब पीना ही नशा नही है, वरन बोतल और गिलास का हाथ मे थामे रहना भी एक नशा है।

लेकिन यह तो बात हो गई दुनिया की, इसम अपना देश कहा गया ?

तो मेरा अपना मानना है कि जिसने भारत को ठीक मे नही देखा वह पूरी दुनिया देख लेने के बाद भी अधेरे का पछी ही बना रहेगा। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अपना देश दनिया मे वही स्थान रखता है, जो किसी नयी वधू की माग मे सिन्दूर की लाली या होठो पर चम्पई लिपस्टिक। गोवा और कोवलम के समान समुद्र का किनारा, अडमान और लक्षद्वीप के समान खूबसूरती से लबालब धरती, शिलाग और गुलमर्ग के समान फुहरनदार मौसम, बगलौर और बम्बई के समान सदाबहार शहर, दिल्ली के समान प्रशस्त राजधानी, गुजरात और कर्नाटक के समान स्वागत मे बिछे नयन, मदुराई और रामेश्वरम के समान भव्य मन्दिर, शालीमार, निशात और वृन्दावन के समान गार्डन, हजरतबल और अजमेर शरीफ के समान पाकदामन जगहें, काशी प्रयाग-हरद्वार के समान घडी घटे की ध्वनि से महमह पौराणिक स्थल बोकारो, जमशेदपुर,

भिलाई के समान आधुनिक तीर्थ, गंगा कावेरी-सी नदी, नैनीताल शिमला-सी हवा, बोधगया सा तीर्थ और सेंट जेवियस सा चर्च, कोणार्क और खजुराहो के समान उन्मुक्त काम मंदिर, तिरुपति और वैष्णव देवी के समान समृद्धि धाम, हिमालय का साया और कन्याकुमारी का पाव-पखारन कहां मिलेगा।

और सबके बाद ताजमहल तो दुनिया में अकेला-अनूठा है, जिसकी छाव में हर प्रेमी को प्यार की एक थपकी महसूस होती है।

मेरी खुशकिस्मती या बदकिस्मती रही कि जितना विदेश देखा, उतना ज्यादा देश और तभी मन करता है कि डंके की चोट यह कहूं कि मुसाफिर हूं सारे जहां का, लेकिन यदि कभी इस जीवन के बाद भी फिर पैदा होना पड़े तो इसी धरती पर पैदा होऊं बकौल फिरदौस के—

'गर फिरदौस बरहए जमी अस्त
अमी अस्तो, अमी अस्तो, अमी अस्त'

हां, दुनिया का हर कोना यदि मेरे लिए पड़ाव का कोई ठौर है तो भारत की भूमि मां की ऐसी गोद जिसमें शरारती बच्चा आंचल में अपना सिर छिपाकर मां के स्तनों को अपनी उग आते हुए दांतों से लहू-लुहान भी कर देता है तो मां उसे उठाकर पटक नहीं देती, केवल उसके सिर पर सिमकारी भरती हुई एक-दो थपकियां लगा देती है।

सूर्योदय के देश मे सूर्यास्त हो रहा है

सूर्योदय के देश म सूर्यास्त हो रहा है और हम नागासाकी मे ढाई दिन बिताकर टोकियो वापस जा रहे हैं। यहा का सूर्योदय कभी भी ठीक से नही देख पाया लेकिन अभी जहाज से डूबते सूरज की दर्द भरी लाली वही भाव मन मे पैदा कर रही है जो आज दिन म नागासाकी ऐटामिक स्मृति समारोह के समय हजारो नागरिको का मनोभाव।

हवाई जहाज अभी-अभी उडा है। यह इनकी डामस्टिक फ्लाइट है लेकिन लगता है मानो अन्तराष्ट्रीय हवाई सेवा को भी पीछे छोड रही हो। एयर बस भी नही, जम्बो जेट।

नागासाकी हवाई अड्डे पर हम उडान के डेढ घटे पहले पहुच गये और देखने सुनने का जो मौका मिला वह आनदवधक था। यह हवाई अड्डा पूरा का पूरा एक द्वीप पर बना है, जहा सिवा हवाई अड्डा के और कुछ नही है। ऐसे म इसकी सुन्दरता का अन्दाज किया जा सकता है। जहाज उडते समय और उतरते समय ऐसा भान होता है मानो हम समुद्र को छू रहे हैं। शाम को जब यह जहाज उडा तो सूर्य की रश्मिया हमे चूम रही थी अथवा यो कह इसकी लालिमा करुण होकर हमे नागासाकी से विदा कर रही थी।

जापान सूर्योदय का देश जापान फूलो का देश, जापान गुडियों का देश, जापान औद्योगिक प्रगति का देश, जापान समुद्र के बीच फले तीन हजार द्वीपो का देश, जापान शिष्टाचार का देश, लेकिन जापान सही मानो में हिरोशिमा और नागासाकी का देश है, जो दुनिया म हर जगह मुहावरे के रूप में दुहराया जाता है।

ऐटम की विभीषिका को प्रथम बार और अंतिम बार हिरोशिमा तथा नागासकी ने ही महसूसा था, उसके बाद ही विश्व को पता चला कि अणु और परमाणु क्या होते हैं ?

पोटेशियम साइनाइट के जहर का स्वाद बताने वाला एक सेकंड के लिए भी कहा जिन्दा बचा था ? ठीक इसी प्रकार हिरोशिमा और नागासाकी हैं, जिन्होंने दुनिया को एक ऐसे विध्वस का परिचय दिया, जिसका अदाज ही किया जा सकता है।

उसी हिरोनिमा और नागासाकी म ३८ वष पूर्व की स्मतिया को सजाने का साक्षी-मुत्र बना, इस अवसर पर आयोजित 'शान्ति मार्च' मे भाग लिया तथा 'स्मृति-समारोह मे उपस्थित होकर जापानवासियो के उस रूप को भी देख सका जो सौन्दय से परे सकल्प है और सकल्प से परे अनुभूति और अनुभूति से परे दद।

देहाती मुहावरा है कि 'जाके पाव न फटे बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई'। हिरोशिमा और नागासाकी मे ऐटम की, सहार की, विध्वस की और उसके साथ साथ शान्ति की जय बात कही जाती है, तो उसका भोगा दद सामने आता है। और जगहो के लिए शान्ति का नारा यदि खोखला नही तो फैशनेबुल जरूर है।

इतिहास मे यो भी निर्माणो की चर्चा कम होता है, विध्वस की अधिक। और हिरोनिमा तथा नागासाकी के विध्वस की कहानी का अपना महत्त्व है इसलिए कि इसके पहले और इसके बाद भी जो लडाइया महाभारतकाल से लेकर आज तक हुई हैं, वह लडाई फौज की अथवा सैनिको की रही हैं। हिरोशिमा और नागासाकी दुनिया मे शायद पहले और अतिम उदाहरण हैं जब लडाई का निशाना निरीह नागरिको को, स्कूल मे पढते बच्चो को, चच मे बाइबिल का पाठ करते पादरी को, फूल बेचती बुढिया को, ट्राम चलाते ड्राइवर को चाय बनाती बहू को होना पडा।

और उसके बाद जिसने बम गिराया उसकी भत्सना की जगह आज भी पूजा हो रही है। अमेरिका और रूस दोनों उस समय एक खेमे मे थे— द्वितीय महायुद्ध के बाद आज तक दोनों का वचस्व दुनिया पर बना हुआ

सूर्योदय के देश मे सूर्यास्त हो रहा है

सूर्योदय के देश मे सूर्यास्त हो रहा है और हम नागासाकी मे ढाई दिन बिताकर टोकियो वापस जा रहे हैं। यहां का सूर्योदय कभी भी ठीक से नही देख पाया लेकिन अभी जहाज से डूबते सूरज की दर्द भरी लाली वही भाव मन मे पैदा कर रही है जो आज दिन मे नागासाकी ऐटामिक स्मृति समारोह के समय हजारों नागरिकों का मनोभाव।

हवाई जहाज अभी-अभी उडा है। यह इनकी डोमेस्टिक फ्लाइट है लेकिन लगता है मानो अन्तर्राष्ट्रीय हवाई सेवा को भी पीछे छोड रही हो। एयर बस भी नही, जम्बो जेट।

नागासाकी हवाई अड्डे पर हम उडान के डेढ घंटे पहले पहुंच गये और देखने सुनने का जो मौका मिला वह आनन्दवर्धक था। यह हवाई अड्डा पूरा-का पूरा एक द्वीप पर बना है, जहां सिवा हवाई अड्डा के और कुछ नही है। ऐसे मे इसकी सुन्दरता का अन्दाज किया जा सकता है। जहाज उडते समय और उतरते समय ऐसा भान होता है मानो हम समुद्र को छू रहे हैं। शाम को जब यह जहाज उडा तो सूर्य की रश्मियां हमे चूम रही थी अथवा यों कहे इसकी लालिमा करुण होकर हमे नागासाकी से विदा कर रही थी।

जापान सूर्योदय का देश, जापान फूलों का देश, जापान गुडियों का देश, जापान औद्योगिक प्रगति का देश, जापान समुद्र के बीच फैले तीन हजार द्वीपों का देश, जापान शिष्टाचार का देश, लेकिन जापान सही मानो मे हिरोशिमा और नागासाकी का देश है, जो दुनिया मे हर जगह मुहावरे के रूप मे दुहराया जाता है।

ऐटम की विभीषिका को प्रथम बार और अंतिम बार हिरोशिमा तथा नागासकी ने ही महसूसा था, उसके बाद ही विश्व को पता चला कि अणु और परमाणु क्या होते हैं ?

पोटशियम साइनाइट के जहर का स्वाद बताने वाला एक सेकड के लिए भी कहा जिन्दा बचा था ? ठीक इसी प्रकार हिरोशिमा और नागासाकी है, जिन्होने दुनिया का एक ऐसे विध्वस का परिचय दिया, जिसका अदाज ही किया जा सकता है।

उसी हिरोशिमा और नागासाकी म ३८ वर्ष पूर्व की स्मृतियो को सजोने का साक्षी पुन बना, इस अवसर पर आयोजित 'शान्ति-मार्च' मे भाग लिया तथा 'स्मृति-समारोह मे उपस्थित होकर जापानवासियो के उस रूप को भी देख सका जो सौ दर्य से परे सकल्प है और सकल्प से परे अनुभूति और अनुभूति से परे दर्द ।

देहाती मुहावरा है कि 'जाके पाव न फटे बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई । हिरोशिमा और नागासाकी मे ऐटम की, सहार की, विध्वस की और उसके साथ साथ शान्ति की जब बात कही जाती है, तो उसका भोगा दर्द सामने आता है। और जगहा के लिए शान्ति का नारा यदि खोखला नही तो फशनेबुल जरूर है।

इतिहास मे यो भी निर्माण की चर्चा कम होती है, विध्वस की अधिक। और हिरोशिमा तथा नागासाकी के विध्वस की कहानी का अपना महत्त्व है इसलिए कि इसके पहले और इसके बाद भी जो लडाइया महाभारतकाल से लेकर आज तक हुई हैं, वह लडाई फौज की अथवा सैनिकों की रही हैं। हिरोशिमा और नागासाकी दुनिया मे शायद पहले और अंतिम उदाहरण हैं जब लडाई का निशाना निरीह नागरिका को, स्कूल मे पढते बच्चा का, चच मे बाइबिल का पाठ करते पादरी को, फूल बेचती बुढिया को, ट्राम चलाते ड्राइवर को, चाय बनाती बहू को होना पडा।

और उसके बाद जिसने बम गिराया उसकी भर्त्सना की जगह आज भी पूजा हो रही है। अमेरिका और रूस दोनो उस समय एक खेमे मे थे— द्वितीय महायुद्ध के बाद आज तक दोनो का वचस्व दुनिया पर बना हुआ

है। दोनों ही दो दुनिया के अधिकारी हैं—और उनके परिवेश से अलग यदि तीसरी दुनिया है तो उसकी बिसात ही क्या है?

यह ठीक है कि जापान ने शस्त्रों का रास्ता छोड़कर उद्योग का रास्ता अपनाया और उसका विकास पूरी दुनिया के लिए एक उदाहरण है, लेकिन इस औद्योगीकरण के पीछे यहां का आदमी मशीन हो गया है। उसकी समवेदना चुकती जा रही है और परम्परागत रूप से वह सम्मान और स्वागत प्रेमी होने के बावजूद कभी-कभी भावनाशून्य हो जाता है।

यहां पर उदाहरण हम अपना ही दें। 'नियोत्जन माहोजी' के निमंत्रण पर हमारा एक प्रतिनिधि मंडल जापान आया, जहां दस दिनों का आतिथेय 'फुजीई गुरुजी ९९वीं जयंती समारोह समिति' की ओर से किया गया। घूमने फिरने की व्यवस्था से लेकर रहने-ठहरने की व्यवस्था पर 'नियोत्जन माहोजी' की ओर से ध्यान दिया गया। हमारी ओर से भी इसमें कम योग नहीं है कि कुछ को छोड़कर हर सदस्य ने अपनी ओर से पंद्रह बीस हजार रुपये खर्च करके फुजीई गुरुजी की ९९वीं जयंती समारोह में हिस्सा भी लिया तथा जहां जहां इनके कार्यक्रम थे, उसमें लगा भी रहा। हमारा दो-तीन दिनों का समय भले घूमने फिरने और खरीदारी में लगा हो, शेष समय हमने प्रार्थना 'शान्ति मार्च' और 'नियोत्जन माहोजी' के सारे मंदिरों के भ्रमण में लगाया।

लेकिन हमारी निष्ठा और आस्था को गहरा धक्का उस समय जरूर लगा जब आखिरी एक दिन के लिए भी हम लोगों को अपने रहने की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ी। इससे भी गहरे दुःख की बात यह हुई कि जितने उत्साह-उमंग के साथ 'नियोत्जन माहोजी' के लोगों ने हमारा टोकियो हवाई अड्डे पर स्वागत किया और शानदार गाड़ियों में बिठाकर ले आये, विदा देने के लिए उनमें से केवल श्री नारिमात्सु रहे और होटल से हवाई अड्डे तक पहुंचने की व्यवस्था भी कुछ लोगों को अपनी करनी पड़ी।

जापान बहुत महंगा देश है जहां चाय या कॉफी के एक कप के लिए भी सात-आठ रुपये देने होते हैं तथा एक प्लेट टोस्ट अथवा सैंडविच भी बीस पच्चीस रुपयों में आता है। ऐसी स्थिति में दल के सभी सदस्यों की व्यवस्था ऐसी नहीं थी कि अन्य सामान्य खर्चों का बोझ भी उठा सकें। इस

समवेदनहीनता का कोई उत्तर हमे नही सूझ रहा था।

ऐसा लगता है कि हर जापानी प्रकृति से कत्रिम की ओर अधिक बढ रहा है। यहा का कोई भी फूल या फल या पेड खुद नही उगता, उगाया जाता है। काम की अधाधुध दौड, विकास की गति, आय मे वृद्धि आदि की चकाचौंध मे जापान का आदमी इस प्रकार खो गया है कि उसे आदमी से अधिक कम्प्यूटर या रोबोट बनना अधिक भाता है। उसने अपने जीवन की स्वाभाविक चेतना को बुद्ध की करुणा की अपेक्षा अमेरिकन अथवा यूरोपीय साझेदारी मे कसने की अधिक कोशिश की है।

चीजो के दाम, होटलो के किराये, बसो रेला टैक्सियो के भाडे, खाने पहनने की चीजो की कीमतें, मजदूरी, सामान्य जरूरत की चीजें, स्कूलो कालेजो के पाठ्यक्रम, पुस्तकें-कापिया, दवाए—ये सारी चीजें जापान मे इतनी व्यय-साध्य हो गयी हैं कि सामान्य पर्यटक इस देश मे कदम नही रख सकता। विकासशील या अविकसित देशो की वस्तु जापान नही है, अमेरिका जैसे विकसित देश ही जापान की तुष्टि कर सकते हैं।

नतीजा यह भी सभव है कि व्यापार की होड मे यह देश कही मात्र व्यापारी ही बनकर रह जाये। तब फिर 'सूर्योदय का देश' की कल्पना या इयत्ता का क्या होगा ?

जापान ऐशिया का एक ऐसा देश रहा है और है, जिसका सामरिक अथवा शक्ति—बाहुल्य मे अपना वर्चस्व रहा है। जापान की राष्ट्रीयता, भाषा प्रेम, स्वय के आधार पर ऊचा उठने की ललक, स्वाभिमान, कमठता और दुनिया के बाजारो मे छा जाने की अक्लमदी के कारण जापान का नाम विश्व मे है। किसी जमाने म रूस, चीन, कोरिया आदि देशो पर भी जापान ने अपना वचस्व दिखलाया है।

लेकिन आज जापान की एक ललक और भी है वह है, एशिया महाद्वीप मे होकर भी यूरोपीय दृष्टिकोण से रहना, खाना, पहनना, दिखलाना और तीसरी दुनिया के लोगो पर वैसा ही प्रभाव रखना।

भारत जापान आपस मे शुरू से ही करीब रहे हैं। इसका एक प्रमुख कारण बौद्ध धर्मावलम्बी जापान का बुद्ध के देश भारत के प्रति वास्तविक लगाव भी है। लेकिन भारत का दरवाजा जैसे सदा-सवदा जापान के लिए

खुला है, मैं नही समझता कि जापान की कोई खिड़की भी भारत के लिए खुली हो। 'तोशिवा-आनन्द' से लेकर 'मारुति-सुजुकी' तक और राजगीर के गधकूट पर्वत से लेकर भुवनेश्वर के शान्ति स्तूप तक का हमने जापान को न्योछावर किया लेकिन जापान मे एक इच स्थल अथवा किसी भारतीय औद्योगिक क्षेत्र की स्थापना की बात हमने कही नही सुनी।

इन सारे आकलनो के बाद हम यही चाहेगे कि सूर्योदय का यह देश हर तरह से फले फूले और आगे बढ़े, क्योकि एशिया महाद्वीप का वर्चस्व आज दुनिया पर कायम करने मे जापान के आर्थिक विकास का बहुत बड़ा हाथ है।

तभी तो डालर और पाउण्ड भी कई बार 'यन' के चरणो पर माथा नवाते हैं।

खुली पलको के साये मे

एक स्थान से दूसरे स्थान म जाना, हवाओ मे उडना, आसमान म पर फलाना, वादलो से बातें करना, नीले आकाश के छोर से नीले समुद्र को देखना—भला किसे अच्छा नही लगता होगा। पतीस हजार फीट की ऊचाई स पाच सौ मील की रफ्तार से भागता हुआ 'एयर इडिया' का विमान भारत की सीमा पार कर पाकिस्तान के ऊपर से उडा और सुस्ताने के लिए उसन तेहरान (ईरान) मे अपने डने बन्द किए। पैतालीस मिनटो का वहा विश्राम रहा, उसके बाद चले तो सीधे मास्को।

मास्को हवाई अडडे पर मौसम सद था, लेकिन धूप चमचमा रही थी। यह मैं मास्को हवाई अडडे पर पाचवी बार आया हू, लेकिन इतना सुहावना मौसम कभी भी नही मिला था। सूरज की छितराई किरणो मे रसियन लडकियो के वाल वैस ही चम चमा रहे थे, जसे गुलाब की पखुडी पर शबनम की बूद और उस पर मेहरबान सूरज की पहली किरण।

रसियन या काफी हटटे कटटे, मोटे चौडे और दबग होते हैं। लेकिन उनमे जो छरहरे हाते हैं, उनका सौदर्य कश्मीर घाटी की सेब को भी लज्जित करने वाला होता है।

पतालीस मिनटो का ही छोटा-सा विश्राम रहा, उसके बाद हगरी के अपने विमान 'मालेव' पर सवार हम बुडापेस्ट के लिए विदा हुए। मास्को हवाई अडडे पर आदत से लाचार 'जगुआर' नाम का एक बाल पेन लगभग चलीस रपये का मैंने खरीद ही लिया।

'मालेव' अपने 'एयर इडिया' के मुकाबले छोटा सा विमान है। विमान चारिका न उडान भरते ही नाश्ता परोसना गुरू किया। मेरे साथ

के यात्री श्री कपूर एवं श्री वेंकट रमन 'सामिष भोजन सामग्री देखकर नाक भौं सिकोड़ने लगे। मैंने हल्के-से हसकर कहा—जो खाना हो खायें, बाकी छोड़ दें।

नाश्ते के साथ-साथ भरपूर मात्रा मे शराब भी थी। जिसका उपयोग साथ के कपूर साहब ने किया। मैं इन मामलो मे अछूता ही रह गया—न शराब, न सिगरेट। और बाहर जाने का असली आनन्द इन दोनों वस्तुओं की बहुतायत है।

मास्को से बुडापेस्ट विमान उड़ा जा रहा है। मेरे वातायन से सूरज चमचमा रहा है, जो मुझे भला लग रहा है। और उससे भी भला लग रहा है—सहयात्रियों का सामूहिक गान। कितने सारे लोग एक साथ गा रहे हैं—बड़े-बूढ़े, बुढ़िया-बच्चियां-नौजवान। सबों का एकाकार स्वर लय और ताल की अनुभूति दे रहा है। भाषा समझ के परे है। लेकिन कान स्वरों को ग्रहण कर रहा है और मधुरता दिल को भी गुदगुदा रही है।

नीचे बादल ही-बादल हैं। सफेद, भूरे, चितकबरे, अनगढ़ और विमान के यात्री भी कुछ ऐसे ही हैं।

मेरे जीवन का हर क्षण भाग रहा है और उन्हे पकड़ने के लिए परेशान हू। जीवन परेशानियों और गमगीनियों का सिलसिला नहीं है, जो हाथ से सिर पकड़कर बैठा रहूं या फिर 'ऐनासिन' या 'सेरिडोन' का सहारा लू। यहा हर क्षण जीवन जीने की लालसा लेकर चलना ही वास्तविक जीवन है, वैसे ही जैसे किसी कवि की पंक्तियां—

'हट चल बची हुई टुकड़ी यह
कर न विचार तनिक क्या बीता।
कदम कदम पर ताल दे रही,
रह रहकर हुकार पलीता।
मरते हैं डरपोक घरों मे,
बाध गले रेशम का फीता।
यह तो समर यहा मुट्ठी भर,
जिसने चूमी वह है जीता।'

और मैं बादलों को निहारता हुआ कहीं खो जाना चाहता हू। कभी-

कभी यह खोना भी किसी पाने से कम सलौना नही है। रूप की धूप के समान या फिर किसी मगछौने के समान कुलाचें भरती सी स्मृतिया। और इन्ही स्मृतियो को लिए दिये पहुच जाता हू हगरी की राजधानी बुडापेस्ट। एक नदी के दो किनारो को जोडता हुआ शहर बुडा और पेस्ट, जहा जिन्दगी का उफान शराब की बोतल मे नही, बौद्धिक अनुराग मे है और वहा पहुचकर मेरी चेतना थम जाती है, कल्पना को साकार आकार मिलता है तथा नये परिवेश की गुदगुदाहट तन-मन को किंचित सरसता प्रदान करती है।

हगरी मे यह पाचवा दिन है और आज राजधानी बुडापेस्ट से दो सौ बीस किलोमीटर दूर डेब्रेसन नामक छोटे-से शहर मे आया हू, जहा मेजवानो ने 'अरानी बीका' होटल मे ठहराया है। शाम को एक तम्बाकू फैक्टरी का निरीक्षण किया, साढे छ बजे रात का खाना खाया, अनौपचारिक-औपचारिक बातें की, शराब के गिलास को बिना पिए होठो से लगाकर 'टोस्ट' आफर किया, खाने के नाम पर उबली सब्जी, मुर्गी को नमक मिर्च छिडक कर हलकी के नीचे उतारा और अब आ गया हू, होटल के उस कमरे मे जो लग रहा है कि अप्सरालोक का एक छोटा सा टुकडा है। खूबसूरत परदे, दीवारो पर फूलो वाली चित्रकारी, खूबसूरत टेबुल-लैम्प, दूधिया बत्तिया, कई छोटे-बडे तिपाई-टेबुल, दो कमरो का कम्पार्टमेण्ट, सोफा, गद्दा, बैठने पर एक हाथ नीचे धस जाने वाला पलग का गलीचा, रेडियो, टैलिवीजन, फोन, फ्रीज, दो-दो अटैच्ड बाथरूम और सेन्ट्रल-हीटिंग, नीचे कालीन, ऊपर आखो की मादकता भरने वाला जामुनी रग का सीलिंग। भला इससे बढकर आराम और समृद्धि किसे कहते हैं?

तीसरी मंजिल पर हू, विशाल शीशे के वातायन से आखें सडक पर फिराता हू तो समाजवादी देश होते हुए भी यूरोपीय संस्कृति और स्वच्छन्दता का परिचय सडको पर दिखाई दे जाता है। बाह मे बाह डाले

जोड़िया, सटने-सटाने और चुम्बकीय परिधि मे घूमन मे लीन युवक-युवतियां जो ठडक से गरमाहट की लड़ाई लड़ रहे हैं और दूधिया रोशनी मे जगमगाते मकान मार्ग। बहुत देर तक खिड़की के पास मे खड़ा बाहर की दुनिया मे खो जाता हू। एक बात जरूर अनुभव करता हू कि इन समाजवादी या साम्यवादी देशो म स्वच्छदता जरूर है लेकिन उच्छृखलता नही है। नहीं तो यूरोप के जो दूसरे कई नगर हैं—पेरिस, लन्दन रोम, एम्सटरडम—भगवान बचाये, इन महानगरो क सडको पर चलने पर, निहारने स—पेड़ो के नीचे या लम्पपोस्ट की आड म ही एल-एस महाक्रम हो जाते हैं, जो बन्द कमरो मे भी सभव नही हैं। दूसरी ओर वियना, सोफिया, बुडापेस्ट मास्को, लेनिनग्राड आदि शहरो म यूरोपीय रग रूप, बाह म बाह डाले और बहुत हुआ तो थोडा बहुत सटाव, जिस तक ता सभव है इसकी सीमा पार करनी है ता घर जाइये, इसके लिए सडक या पार्क या सार्वजनिक स्थान नही बने हैं।

यह सब देखता-सोचता सोफे पर आकर अधलेटा हो जाता हू। इच्छा ही नही होती है कि सोऊ। इच्छाए आदमी को गुदगुदाती हैं। इतना अच्छा होटल का कमरा है कि लगता है कि रातभर किसी की प्रतीक्षा देखता रहू या फिर रातभर अपने आप स बातें करता रहू या फिर रातभर लिखता रहू।

बन्द आखों की नियति और कमरे म सिमटे ससार की नियति भी खूब है। अकेलापन किसी किसी को काट खाता है और मुझे मेरे अकेलेपन से बेहद प्यार है। लेकिन जीवन का अभिशाप है कि ऐसे प्यारे क्षण मिलते ही बहुत कम हैं।

मेरा भी विचित्र हाल है। कभी सोफे स खिड़की के पास और कभी खिड़की से बिस्तर पर और फिर बिस्तर से उठकर लिखने की टेबुल पर। मन न तो कही अट रहा है और न कही ठहर रहा है। बजारे के समान, समुद्री जहाज के पछी के समान, मद माता मृग—छौने के समान इधर उधर डोल रहा है। मन करता है, बाहर निकल पडू, और इस अनजान शहर म एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम आऊ। रात के ग्यारह बजे हैं, सकोच लगता हू—नही तो कोई मनमौजी साथी होता तो अपने को रोक नही पाता।

ऊपर से झाककर सडक की चहलकदमी देखना भी बडा भला लग रहा है। हमारे यहा सफेद बाल वृद्धावस्था की निशानी हैं और यहा सुन्दरियो एव तरुणियो की सुघरता पर निभर करती है। वहा के सन से सफेद बाल यहा किरण से चमकीले सिद्ध होते हैं। जिनमे जितना ही सुनहलापन है, उसकी बाकी चितवन मे भी उतना ही अधिक जान है।

ठडी रात सिकुडन और सिहरन की रात होती है, लेकिन यहा मस्ती और बेफिक्री का आलम है। हम जीकर भी मर रहे हैं और ये मरकर भी जी रहे है। शाश्वत जीवन का सयोगी क्षण, जो अमलतास के गुच्छो के समान गदराया रहता है, नीले आकाश के समान जिससे आभा टपकती रहती है, खोयेपन मे टगी आखो के समान जिनमे सपने तैरते रहते हैं, मादक क्षणो म व्यक्त विश्वस्त के समान जो ऋतुसहार की सृष्टि कर देते है और रहकर भी जो नही रहते और नही रहकर भी जो रहते हैं—ऐसे क्षणो का जीवित विश्वास भी अपना ही है।

रात के पूरे बारह बज रहे हैं। 'बम्बई दिनाक ' उपन्यास पढते पढते सोने की तयारी मे बत्ती बुझा दी कि मन ने कहा—एक बार और झाककर सडक को निहार लो। सोते-सोते उठ गया—सडक दूधिया रोशनी मे नहा रही है। सामने ही ट्राम और बस का स्टॉप है अत दस-पाच लोग वहा खडे हैं और इसी समय एक जोडा चहलकदमी करता हुआ न्यूम बल्ब के लम्पपोस्ट के नीचे आकर खडा हो जाता है और पुरुष अपनी प्रेमिका या पत्नी को चूम लेता है। कोई छिपाव या दुराव नहीं है, सहजता है, विश्वास है। और देखने दिखलाने की लालसा या छिपाने की पीडा नही है।

मैं सोना चाहता हू, पर सो नही पाता और लिखना नही चाहता पर लिख रहा हू। सोचता [redacted] 'न' और 'हा' की यह आख मिचौनी कब तक चलती रहेगी ?

लगा था कि भारत के ही किसी हिस्से मे हू

भारत की सीमा से हजारो मील दूर बसे मूगा मोती-से द्वीप मारिशस का नाम सामने आते ही ऐसा लगता है कि मानो देश का ही कोई टुकडा हमारी आखो के सामने खडा हो गया है। आखिर क्या ?

और भी तो दुनिया म बहुत सारे देश हैं—छोटे और बडे, अन्य भी तो देश हैं दुनिया म ऐसे जहा भारतीयो की सख्या कम नही है, फिर मारिशस म ही कौन-सी ऐसी खूबी, ऐसी खासियत, ऐसा अनुराग, ऐसा अपनापन, ऐसी आकषण-शक्ति है जो हमे मिलाती ही नही, बुलाती भी है। हमे केवल बौद्धिक कुतूहल म ही प्रेरित नही करती, दिल की गहराइयो मे कही गुदगुदी भी पैदा करती है।

आखिर क्यों ?

इसलिए कि दो-ढाई सौ साल पहले हमारे पूवज इस धरती पर दास बनकर आए थे और आज स्वामी बनकर राज कर रहे हैं। उन्होंने बजर उजाड, ऊबड-खाबड धरती को अभिसिचित ही नही किया था, अभिषेक भी किया था और धरती उसी की होती है जो उसकी कोख स रत्न पैदा करने की क्षमता रखता है। इसके साथ ही मारिशस के प्रति हमारे आकषण का सबसे बडा कारण यह है कि यो तो भारतीय मूल के नागरिक दुनिया के अनेक देशों मे फैले हैं, लेकिन मारिशस ही उनमे एक ऐसा देश है जहा सत्ता मूलत भारतीयो के हाथ म है। सर शिवसागर रामगुलाम एक ऐसे प्रधानमत्री और नेता हैं जो खुलेआम इस बात की घोषणा करते हैं कि हमारे रक्त मे भारतीय खून है तथा हमारी सस्कृति, सभ्यता एव धार्मिक अनुभूतियो का केद्रबिंदु भारत है।

तभी तो मारिशस के सबसे तेजस्वी कवि श्री बृजेन्द्र भगत 'मधुकर'

आज उच्छवास और आह्लाद के साथ गाते है—

'भारत का स्वागत करते हैं
मन मन्दिर श्रद्धा-दीप जला अर्चन से स्वागत करते हैं
आस्तिकता के शुचि थाल सजा पूजन से स्वागत करते हैं
माला मोती हीरा चादी, कचन से स्वागत करते है
अक्षत कुमकुम धूप सुगधी चन्दन से स्वागत करते हैं
माथ झुका शुचि चरणो मे तन मन से स्वागत करते हैं
भारत के वीर सपूतो का अभिनन्दन स्वागत करते है
जिसके मानस मे बहती है युग युग से गगा की धारा
हिमगिरि की उन्नत चोटी से गुजित आजादी का नारा
उस पुण्य पुरातन धरती का अभिनन्दन स्वागत करते हैं'

और 'द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन' के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका मे मारिशस के एक सशक्त व्यक्तित्व श्री खेर जगत सिंह ने, जो उस समय वहा के आयोजन मन्त्री थे, दृढता के साथ लिखा था—

'मारिशस मे हमारा जीवन एक ऐतिहासिक विरासत का जीवन प्रतीक है। दो सौ वर्षों पूव के इस इतिहासहीन देश मे अफ्रीका, एशिया और यूरोप जैसे तीन महाद्वीपो से लोग आए और एकता एव सद्भाव के साथ इस धरती पर जिये। उपनिवेशवाद के भयानक और दारुण दवाव एव अवरोध के बावजूद, आर्थिक और सास्कृतिक शोपण के रहते हुए भी हमारे पुरखो की धमनियो मे प्रवाहित सास्कृतिक शौर्य मद नही हुआ। बढती यातनाओ के साथ साथ धार्मिक-सास्कतिक आस्थाए गहन होती गयी।

यह सब होना सयोग नही था। इसके पीछे एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी। हमारे पुरखे अपने साथ जो हिन्दू, बौद्ध, इस्लामी और ईसाई सस्कृति लाए थे, वे विश्व की महान सस्कतिया हैं। इसी कारण उनके परस्पर मिलन से इस देश मे तनावहीन, आत्मीयतापूर्ण एव सौहादसम्पन्न सास्कतिक जीवन का निमाण हुआ।

शुरू से लेकर आज तक की हमारी यात्रा सास्कृतिक समन्वय की यात्रा है। एक सुन्दर सश्लिष्ट सस्कृति के विकास की ओर पहल करनी है। यही हमारे जीवन की विशिष्टता और विलक्षणता है।

मारिशस में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजन का मकसद हमारे लिए महान हिन्दी का ढिंढोरा पीटना नहीं है। यह हमारे सांस्कृतिक गौरव व बोध का परिचायक है। पहचान और अस्मिता की लड़ाई में हमारी अपराजेय दृढ़ता का द्योतक है। उपनिवेशवादी शासन ने इस देश के बहुसंख्यक समाज की भाषा संस्कृति को हमेशा हीन, वाहियात और गयी-बीती सिद्ध करने तथा उन्हें अपनी विरासत से काटकर अलग रखने का बराबर प्रयत्न किया था। आज भी इस देश में एसे षडयन्त्र रचे जा रहे हैं। यह सम्मेलन इन सारे षडयन्त्रों से जूझने की हमारी उद्दाम आकांक्षा और प्रबल इच्छाशक्ति का प्रतिफलन है।'

मारिशस गए चार-पांच साल हो गए, फिर भी उसकी याद आते ही ऐसा लगता है मानो अभी भी मैं पोर्ट लुई के महात्मा गांधी स्क्वायर में खड़ा हूं। गन्ने के खेतों से उठती हुई 'जय जय हनुमान गोसाईं, कृपा करहू गुरुदेव की नाईं' जैसे हनुमानचालीसा की चौपाई सुन रहा हूं। सर शिवसागर रामगुलाम अभिमन्यु अनत, रामसेवक जैसे भारतीय मूल के मारिशसवासी से 'का हालचाल बा' जैसी परिचित आवाज में बातें कर रहा हूं।

धरती का मोह और माटी की गंध भी विचित्र होती है। बार-बार वह माटी कभी पुकारती है और पूर्वजों के लहू के रक्त में अपनेपन की सुर-सुरी पैदा करती है।

मारिशस इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। उसकी माटी में, कण-कण में और चप्पे-चप्पे पर बिखरा है भारत अपने मूल रूप में, निजता में, संस्कारों में। भारत यहां जीवित है—बिरहा की तानों में चिकनिया कबड्डी और गुल्ली डंडे के खेलों में लोक-गीत की धुनों में, मन्दिर शिवालय की देवी-देवताओं में, अक्षत-चन्दन धूप दीप घंट और प्रसाद के थाल में, धोती-कुर्ते और पगड़ी में, बैंगन के चोखे, काहर लौकी की छयोंकन में, ढोल मंजीरे के बोलों में और रामायण महाभारत गीता तथा हनुमानचालीसा जैसे धर्म-ग्रंथों में।

पोर्ट लुई की सड़कों पर चलने वाली स्त्रियां इस बात के लिए अतिशय सावधान रहती हैं कि सिर से आंचल न गिरे और किसी पगड़ी वाले

पंडितजी को देखकर अद्यतन फैशन का मारिशसवासी भी 'पाव लागी' ही कहता है।

परिचित फूल, फल, पेड, सब्जी आदि भारत के किसी हाट-बाजार का वातावरण पैदा करते है। बडा हो या छोटा, सत्यनारायण भगवान की कथा, एकादशी व्रत, होली, दीवाली, दशहरा और श्राद्ध पिण्ड आदि उनके सस्कारो मे रच बस गए है।

सच मे मारिशस मे रहने वाले हर किसी भारतीय मूल के व्यक्ति की आखो मे भारत झाकता है इसलिए तो हिन्द महासागर के बीच बसा यह द्वीप 'लघ भारत' कहलाता है।

मुझे याद है बोइग ७०७ जिसका नाम 'गौरीशकर' था, लेकर हमे जब मारिशस की धरती पर उतरा तो जो भी चेहरे दिखलाई पडे उनमे काशी की श्रद्धा और बलिया, छपरा, आरा, गाजीपुर, देवरिया की भोजपुरी उन्मुक्तता नजर आयी।

मारिशस के निर्माण की प्रचलित दतकथा बहुत रोचक है। कहते है कि भगवान राम के हाथो जब मारीच मारा गया तो मरते समय उसने यह वरदान मागा कि मैं हमेशा आपका नाम सुनता रहू। भगवान श्रीराम ने ज्योही उसके शव का स्पर्श किया, वह मोती मे परिणत हो गया। उस मोती को उठाकर भगवान ने बडे जोर से दक्षिण की ओर फेंक दिया। वही मोती ७२० वर्गमील का मारिशस द्वीप है जिसमे आज भी वास्तविक आब, चमक, सौन्दर्य और आकर्षण है।

सच है कि भाषा, सस्कृति, खान पान तथा रहन-सहन विचित्र रूप से एक-दूसरे को जोडते हैं। भारत और मारिशस का सबध वास्तविक रूप मे बडे और छोटे भाई अथवा बहन का है, वह भी चचेरा, ममेरा, फुफेरा नही, बिलकुल सगा।

और यही कारण है जो किसी भी मारिशस गए-आए भारतीय यात्री को ऐसा लगेगा कि वह विदेश मे नही, वरन देश के ही किसी हिस्से मे है, जिसका सौन्दय कन्याकुमारी या कश्मीर के समान है, सस्कृति काशी या रामेश्वर के समान, भाषा बलिया आरा छपरा की तरह और रीति रिवाज भारत के ही किसी गाव के समान, जिसमे 'आल्हा' की ठनक और 'उदल' की गरमजोशी दोनो है।

खिडकी खुलती है · खिडकी वद होती है

पता नही शीपक मन को क्यो सूझा ?

ताइवान हवाई अड्डे पर थाइवेज एयरवेज का यह जहाज खडा है जिस पर हागकाग में सवार हुआ और टोकियो मे उतरना है। ताइवान मे जहाज से उतरकर हम लॉज मे गए, वही देखते भालते 'ओमेगा' का यह बाल पेन खरीदा, जिससे तीन दिनो के बाद लिखने बैठा हू।

ताइवान की स्वाभाविक याद नेताजी सुभाषचद्र बोस के साथ जुडी है। १६४५ म उनका हवाई जहाज यही दुर्घटनाग्रस्त हुआ था, आग लग गयी थी, जिसमे उनकी मत्यु हुई। सभवत उस समय यह क्षेत्र जापानियो के कब्जे में था। मैंने बहुत ध्यान से न्यायमूर्ति खोसला की वह रिपोर्ट पढी थी, जिसमे नेताजी के देहा त का विस्तत विवरण था।

ताइवान की भूमि का प्रणाम करने जहाज से बाहर निकला, हालाकि लाज के अ दर ही रहा। सतोष रहा तो यही कि ताइवान म नाम मात्र का ही सही रुका तो। पता नहीं कभी चीन आना हो पाता है या नही। लेकिन चीन के द्वार तक तो किसी न किसी रूप मे पहुच गया।

यात्रा का यह चौथा दिन है—कलकत्ता, बकाक हागकाग, टोकियो। हागकाग मे पहुचकर आदमी पगला जाता है—क्या ले, क्या न ले। सामानो से पूरा हागकाग भरा हुआ है। लोग यहा खरीदारी करने ही आते हैं। कोई बडी खरीदारी करे तो अच्छी बात है, जसे मेरे साथ के मित्रा ने वीडियो की खरीदारी की। लेकिन मेरे जसा आदमी औपचारिकताओ मे ही फस जाता है कि हर परिचित मित्र-परिवार सवधी की तसवीर सामने आकर खडी हो जाती है—किसके लिए क्या लू और लेता ही चला जाता हू।

बिसाती की दुकान पसर जाती है, लेकिन मन को संतोष नहीं होता। लगता है कि अरे वे तो छूट ही गए। मैंने जब एक सूची बनानी शुरू की तो साठ के करीब आत्मीयजन एक ही सांस में सामने आ गए, मैंने वहीं कॉमा दे दिया—फुल-स्टॉप की बारी तो कभी आएगी ही नहीं।

लिखना यहां बड़ा कठिन काम है। मुश्किल से कुछ लिखना शुरू करता हूं कि कोई-न-कोई सामने आकर खड़े हो जाते हैं—क्या लिख रहे हैं?

हां, आपका क्या है, आप तो लिखकर ही पूरा खर्च निकाल लेंगे। दूसरी आवाज आती है।

सभले नहीं कि तीसरे भाई साहब अपनी बात रख देते हैं—जो भी लिखिएगा, उसमें हम लोगों का भी नाम कहीं जरूर दीजिएगा।

लिखना ऐसे में हो नहीं सकता। यह ठीक है कि मेरा लिखना-पढ़ना ऐसे ही भाग-दौड़ में हुआ करता है, फिर भी लिखना और वह भी सार्थक लिखना कुछ स्थिरता जरूर चाहता है।

लेकिन इस 'ग्रुप यात्रा' में स्थिरता कहां? है तो अस्थिरता या फिर भाग-दौड़ अथवा फिर बंधा-बंधाया कार्यक्रम। इतने बजे चलना है, बस आ गयी, जल्दी कीजिए, सभी प्रतीक्षा में हैं आदि। और आप यदि साथ न निभाए तो अन्यों को जो असुविधा होती है, नाक-भौं सिकोड़ते हैं जो उचित है।

मुझे ऐसी यात्राओं में सबसे बड़ी असुविधा यही होती है कि लिखने-पढ़ने का वक्त नहीं मिल पाता। साथ साथ कमरे में ठहरे यात्री के नियम कानून का भी ध्यान रखना होता है बातें न कीजिए तो आपको अहमी या असामाजिक समझने की वे सही भूल कर सकते हैं।

फिर हर एक की रुचियां तो एक होती नहीं, कोई पांच बजे उठता है, तो कोई नौ बजे तक सोता है। इसी भांति किन्हीं को सिगरेट शराब सब चाहिए, किसी को हर चीज से परहेज। इस यात्रा में मेरे साथ कमरे में बम्बई के श्री वोरा हैं, बुजुर्ग से गांधीवादी व्यक्ति—न उन्हें खाना, न पीना। रुचि मिल गयी है—यात्रा निभ जाएगी।

हां, तो ताइपेह—यानी ताइवान के हवाई अड्डे पर, इस 'बॉलपेन' को

चार डालर यानी चालीस भारतीय रुपयों में खरीदा। ताइपेह से टोकियो तक की उड़ान दो घंटे पचास मिनटों की है—मुझे चिन्ता हो रही है कि इस समय का उपयोग कर लूं—जिससे यात्रा बिलकुल अर्थहीन न हो जाए। और चार डालर के इस कलम की कीमत भी वसूल हो जाए।

वैसे विदेशों के यात्रा भ्रमण में मुझे कुछ चीजें विचित्र रूप से आकर्षित करती हैं, जिनके मोह को मैं रोक नहीं पाता—जैसे कलम, किताबें, स्टेशनरी, होटलों तथा हवाई जहाजों की पत्र पत्रिकाएं, पर्यटन स्थलों के लुभावे पोस्टर, पुस्तकें तथा फोल्डर। मन करता है कि सबों को जमा करता चलूं और उसी में बोझ बढ़ता चला जाता है।

इस बार सोचा था कि कलम नहीं लूंगा—लेकिन होते होते पांच तो ले ही चुका, लेकिन कीमती कोई नहीं।

'थाई एयरवेज' का पिण्ड नहीं छूट रहा है। जहाज की आवाज से ऐसा लग रहा है मानो अब नीचे की ओर जा रहे हैं।

हालांकि यह जहाज टोकियो जा रहा है, लेकिन जापानी यात्री शायद कोई इसमें नजर आ रहे हैं। क्यों? इसलिए कि वे अपने एयरवेज 'जाल' से यात्रा करना अपनी राष्ट्रीयता का एक अंग मानते हैं।

सब तो ठीक है, लेकिन ये ऐसा क्यो करते है

जापान वाले अपने देश को 'सूर्योदय का देश' मानते हैं और वहो यह सुना कि भारत को व 'चन्द्रमा का देश' मानते हैं। चलिए, यह भी अपनापन का एक बहाना है कि सूरज और चाद आसमान के खिलौने हैं तथा इनमे से एक आकाश मे अपनी उपस्थिति से पृथ्वी को दिन और रात का भान करा देता है।

तो बात बढाऊगा नही, इतना ही कह दू कि जब यह लिख रहा हू तो अपनी डायरी मे यह देखकर गुदगुदी हो रही है कि आज के ठीक एक साल पहले आज के दिन मैं जापान मे था। यानी चन्द्रमा के देश का वासी मैं, सूरज किरण की छाव तले। यानी मारुति के देश का यात्री सुजुकी के देश मे। यानी हिमालय की शीतलता की गोद से, फुजी के दावानल के साये मे।

और यह भी एक ध्यान देने की बात है कि जिस समय हमारे पाठक इस लेख को पढ रहे होंगे, उस समय ठीक आज के एक साल पूर्व मैं नागासाकी मे था। जी हा, वही नागासाकी, जिसने विश्व मे हिरोशिमा के बाद पहली बार ऐटम का स्वाद अपनी छाती पर चखा था, झेला था, मटियामेट हुआ था, आने वाली पूरी की पूरी पीढी क्लीब, नपुसक और विकलांग हो गयी थी, उसी नागासाकी मे मैं जब पहुचा था तो निश्चित रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध मे मटियामेट हुए जापान की तसवीर सामने आ खडी हुई थी। लेकिन आज कोई उसी जापान को देखे तो सहसा विश्वास ही नही कर पायेगा कि यह वही देश है, जिसमे आज से चालीस साल पहले

मलबा ही मलबा था और दाने-दाने के लिए लोग मोहताज। किसी के शरीर पर वस्त्र नहीं, किसी के चेहरे पर मुसकान नहीं, किसी के पास रहने को साबित-दस्तूर घर नहीं। कल कारखाने, स्कूल-कॉलेज, अस्पताल-होटल, पार्क-स्नानागार—सब के सब मिट्टी में मिल गये थे। लेकिन वाह रे जापान, मलबा पर कोई सुनहरा महल खड़ा करना सीखे तो वह जापान आकर देखे।

आज विदेश व्यापार से लेकर हर चीज के कारबार में जापान का कोई मुकाबला नहीं। जहाँ अन्य देशों के विदेश व्यापार करोड़ों और अरबों में होते हैं, वहीं दुनिया में मात्र जापान और अमेरिका दो ही ऐसे देश हैं जिनका विदेश व्यापार खरबों में होता है। लेकिन इसमें एक मौलिक अन्तर है। अमेरिका का जो भी व्यापार है उसमें कहीं किसी प्रकार की प्रतियोगिता नहीं है क्योंकि उसका व्यापार है शस्त्रों का, वैज्ञानिक उपकरणों का सामरिक वस्तुओं का। उसने दस हजार की वस्तु का दाम यदि दस लाख कह दिया तब भी खरीदने वाले को कुछ अंदाज नहीं, क्योंकि यह उसकी मोनोपाली है। दूसरी ओर जापान का जो भी कारबार है उसके लिए उसे प्रतियोगिता के बीच से गुजरना पड़ता है। जैसे टेपरेकार्डर, रेडियो, घड़ी, रंगीन टेलिविजन कैलकुलेटर आदि रोजमर्रा की चीजें। लेकिन सिंगापुर और हांगकांग जैसे खुले बाजार में भी जापान सभी देशों को पीछे ढकेलकर अपना कारबार कर लेता है और सबस्व के साथ करता है। ग्राहक स्वयं जापानी सामान खरीदना चाहता है।

जापान का सौन्दर्य अनुशासन, नागरिक बोध, सफाई, लोगों की निष्ठा, ईमानदारी और कार्यक्षमता देखने योग्य है। हम तो यह सब देखकर लज्जा से डूबते रहे कि पता नहीं हम कब इस मंजिल तक पहुँचते हैं।

अपनी बात को केन्द्रित करने के लिए मैं अपनी डायरी का सहारा लेता हूँ, जो मैंने नागासाकी में बैठकर लिखी थी—'नागासाकी के जिस होटल में ठहराया गया है वह समुद्र के किनारे है और गोल सी शीशे की खिड़की से समुद्र और उसके पार हरा भरा पहाड़ दिखाई दे रहा है। अभी-अभी गरम पानी के टब में आधा घंटा डूब चुभ होकर नहाकर

निकला हू तथा किमोनो पहनकर लिखने बैठ गया हू। ऐसा शान्त परिवेश मिला है कि मन करता है रातभर लिखता ही रहू।

'आज नागासाकी मे सबेरे से ही व्यस्तता रही। नाश्ते के बाद फुजीई गुरु जी द्वारा निर्मित शान्ति-स्तूप देखने गया और उसकी बात मे ही 'निपोरजी माहोजी' के मन्दिर मे पूजा मे शामिल हुआ। यहा पर फुजीई गुरु जी ने जमकर ऐटम के विरोध मे भाषण दिया, जो उनके जीवन का सबसे बडा लक्ष्य है।

'यह मन्दिर पहाड पर है और इसका परिवेश देखने ही योग्य है। चारो ओर बासो तथा सखुआ के इतने घनघोर जगल कि धूप भी इनके ऊपर टगी रह जाती है। पूरे जापान मे बासो का जगल भरा हुआ है तथा उनकी सुन्दरता भी देखने योग्य है। तभी तो भारत के सुप्रसिद्ध शिल्पी उपेन्द्र महारथी ने यहा से वेणु शिल्पी का विशेष ज्ञान प्राप्त कर उसे अपने यहा फैलाया।

'बौद्ध पूजा की विधि भी खूब है। दो तीन घटा तक पूजा, जिसमे घडी घट, मनोच्चार और अर्चन की अनेक विधिया रहती है। इन्हे देखकर अपने यहा के वेदपाठ की याद बरबस आ जाती है। जहा कही भी पूजा मे हम शामिल हुए, हमे भी 'नम्यो हो रेंगे क्यो' का मत्रपाठ सस्वर करना पडा।

सच मे जापान देखकर मन मे तृप्ति होती है कि एशिया मे भी यूराप-अमेरिका को पीछे ढकेलने की ताकत है और वह ताकत आज निश्चित रूप से जापान के पास है, जिसने औद्योगिक प्रगति के बल पर विश्व मे अपना निश्चित स्थान बना लिया है। हालाकि जापान म महगाई भी उसी अनुपात मे है, जिसका मुकाबला कोई भी विकासशील देश का यात्री नही कर सकता है।

फिर भी हम छककर जापान घूमे और हमने पाया कि जापान सूर्योदय का ही नही, फूलो का, फलो का, गुडिया का, तीन हजार द्वीपो का हिरोशिमा और नागासाकी का तथा सुनहले ख्वाबो का देश है।

लेकिन सब कुछ होते हुए भी हमारी समझ म एक बात नही आयी और उसे भूलना चाहकर भी हम मजबूर हैं याद रखने के लिए।

टाकिया के जिस होटल मे हमे ठहराया गया था, उसमे सावजनिक स्नानागार की व्यवस्था थी, जिसमे हम चार भारतीय एक साथ स्नान करने पहुचे और बाहर अपने कपडे उतारकर अडरवियर पहने हुए और तौलिया लपेटे ज्यों ही प्रवेश किया, वहा का दृश्य देखकर दग रह गये। एक साथ लगभग तीस चालीस लोग स्नान कर रहे हैं और सब के सब दिगम्बर स्थिति मे। एक-दूसरे को देखकर न तो कोई झिझक रहा है और न शर्मा रहा है, बल्कि एक-दूसरे से अपनी पेट पीठ की सफाई भी करवा रहा है।

हमारे लिए यह बिलकुल नयी बात थी और नया तजुर्बा था, अत चारो के चारो बाहर भागे और लगा मानो किसी गलत जगह पहुच गये हो। पूछताछ करने पर पता चला कि इसके अलावा और कोई स्नानागार नही है अत स्नान करना है तो इसीमे, अन्यथा रहिए बिन नहाय। हमारे साथ एक बुजुर्ग-से डाक्टर साहब थे, उसमे भी वे शल्य चिकित्सक। उन्होने कहा कि इसमे क्या रखा है, चलिए उतारिये कपडे और घुस चलिए। उन्होंने अपने को निवस्त्र करके हम सबो को प्रेरित भी किया, लेकिन हम सब नही माने और अडरवियर पहने हुए ही अन्दर प्रवेश किया। वहा का माजरा यह कि हम लोग उन्हें जगली समझ रहे थे, जो बिलकुल नगे थे और वे हमे पिछडा और जगली समझ रहे थे, क्योकि हम नगे नही थे।

अब तक मेरी समझ मे यह बात नही आयी है कि जापान एक सभ्य देश है, सुसस्कृत देश है, धार्मिक देश है फिर भी वह इसे क्यो अपना रहा है। क्योकि आज दुनिया म जितने भी देश है, चाहे व अमेरिका मे हो, यूरोप मे या फिर एशिया महाद्वीप म, सब के-सब इस निलज्जता पर नही उतरे हैं। ठीक है कि इस तरह से हर कोई नहाता है, लेकिन बद बाथरूम म, वह भी अकेले। यह सावजनिक नगापन समझ के परे की बात है।

लेकिन जापान मे हर जगह इस तरह के सावजनिक स्नानागार हैं, जिनम ठाट के साथ, उमग के साथ घटो देह रगड रगडकर नहाने की प्रथा और आदत है और वह भी बिलकुल दिगम्बरी स्थिति मे। सूर्योदय क देश म ही सभ्यता का यह सूर्यास्त मैं कुछ समझ नही सका और बार-बार मेर मन म यही प्रश्न गूजता रहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन ये ऐसा क्या करते हैं

नियति मेरे हाथ मै उसके साथ

यायावरी वत्ति ही नही, नियति भी होती है और वही नियति मेरेह थ है या मैं उसके साथ हू । जीवन का अधिकाश भाग उसी को अर्पित है, तभी तो सडक मार्ग से चल दिया दिल्ली । पटना से दिल्ली और दिल्ली से पटना हवाई जहाज या रेल से जाना-आना तो अब कोई उल्लेख्य नही है, लेकिन आज भी रोड से यानी कार या बस से कोई दिल्ली आये जाये तो एक ओर वह सिरफिरा होगा, तो दूसरी आर दु साहसी । और मैं दोनो का मिला-जुला रूप हू । तभी ता साल मे एक दो बार दिल्ली से पटना और पटना से दिल्ली आज भी सडक-माग से कर लेता हू और इस प्रकार विगत आठ दस वर्षों मे लगभग बीस-पच्चीस बार यह आवाजाही मैंने की है, और इस दु साहसपने मे कितने मीठे तीते कडवे स्वाद को मैंने चखा है, यह मैं ही जानता हू ।

खर, लौटता हू अपने मूल विषय पर—इस बार भी रवाना हुआ पटना से जीप मे । निकलना चाहता था तीन चार बजे भोर मे, लेकिन नीद खुली पाच बजे और चाय पान करते, सामान सजोते-सरियाते बज गया सात और उसी समय गाडी चल पडी दक्खिन पश्चिम ।

यहा यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि ड्राइवर रखा है बुजुग सा व्यक्ति श्री झा । उन्हे बार-बार यह ताकीद कर दिया था कि चार बजे भोर मे ही निकलना है । अत रात म ही आकर सो जायेंगे या सवेरे चार बजे तो जरूर आ जायेंगे । लेकिन वे सात बजे तक नही आये । तब अपने बाजुओ पर भरोसा कर स्वय स्टीरिंग सभाला।दानापुर की सैनिक छावनी

के बीच से गुजरना मुझे बराबर अच्छा लगता है। कम से कम सड़के बाए नाए छावनियो मैदानो, मे फले ये वीर जवान चुस्ती-दुरुस्ती के प्रतीक दिखाई देते हैं। कितनी सफाई, व्यवस्था और कायदे करीने का वातावरण। कवायद करते राइफल चलते, सफाई म सलग्न, सब्जी उगाते, हर तरह के कामो मे मशगूल जवान विश्वास पदा करते हैं कि यह देश बिलकुल नपुसक नही है। दानापुर छावनी का अपना स्थान है—१८५७ म इसकी खास भूमिका रही है—पक्ष और विपक्ष दोनो।

आगे बढते ही मनेर सडक के किनारे बस टैक्सी के अड्डो के आसपास लड्डुओ की दजनो दुकानें। मनेर म लड्डू नामी हैं, देखने और खाने मे। लेकिन इन सभी दुकानो म बस एक ऐसी दुकान है बीच मे जो बरबस मुझे अपनी ओर खीच लेती है। दुकान मालिक सुरेश भला दिलदार आदमी है लेकिन यही उसकी पहचान नही है। उसकी पहचान कुछ और है जिसके कारण इस ओर से गुजरने वाला हर यात्री उसकी ओर देखे बिना नही रह सकता है तथा बच्चा-बच्चा उसे जान गया। हो तीस-बत्तीस की उमर, लेकिन गजब का मोटापा—चार पाच आदमी उसके कुरते मे समा जायें और पाजामे के एक पाव के अन्दर औसत कद के चार छ लोग अपना पाव डाल दें तब भी जगह बची रहेगी और उसके बाद भी फुर्तीला और काम म चुस्त।

एक दिन जब मेरी गाडी सुरेश की दुकान पर रुकी तो वह मुदित मन मेरे पास आकर खडा हो गया और उसने मुझसे पूछा—हुजूर, आप तो दीन दुनिया बराबर घूमते रहते हैं, मुझे यह बताइये कि मुझसे मोटा आदमी इस दुनिया म कही देखा है?

मैंने दिलासे और सात्वना के लिए कहा—सुरेश जी, आपकी मोटाई क्या है, मैंने तो और भी आपसे अधिक मोटे आदमियो को देखा है।

'हुजूर, तब तो मैं बेकार हो गया। मैंने तो समझा था कि दुनिया म सबसे मोटा आदमी मैं ही हू। तब तो मेरा रेकार्ड नही बनेगा।' सुरेश प्रसाद किंचित उदास हो गये।

इसी प्रकार एक दिन सुरेश ने सूचना दी—सर, उतरा जाय, लड्डू-पेड्डू खाइए। उसके बाद बोले—सर, मैंने एक स्कूटर खरीद लिया है

लेकिन मुश्किल यह है कि उसकी गारटी कम्पनी ने नही दी है।

'क्यो ?' मैंने जानना चाहा।

'सर, उसने पूछा कि मैं ही इसपर सवारी करूगा ?' मेरे हा कहने पर मनेजर बाला कि तब मैं गारटी नही दूगा।

'लेकिन स्कूटर का हाल क्या है ?' मेरा प्रश्न था।

सुरेश हस पडे—हुजूर, कुछ नही आधे घटे मे मनेर से पटना पहुच जाता हू। बस यही है कि पीछे दूसरी सवारी नही बैठाता और हर दूसरे महीने स्प्रिंग बदलवाना पडता है।

मनेर के लड्डू से मुह मीठा कर आगे बढे और शाहाबाद जिला पार किया, जिसके अब दो हिस्से हो गये है—भोजपुर और रोहतास। आरा से सासाराम की राह दिन मे ही चालू रहती है, आठ बजे रात के बाद बडे-बडे दिग्गज भी इस रास्ते को पार नही कर सकते हैं। यदि किसी ने हिम्मत की तो लुटायेंगे भी और कुटायेंगे भी।

सासाराम मे जी० टी० रोड, जिसका नया नामकरण अपने आदि निर्माता शेरशाह के नाम पर 'शेरशाह सूरी पथ' किया गया है उस पर आ गये—तब जान मे जान आयी। तीस चालीस पचास फीट चौडी सडक, ट्रको की अनवरत आवाजाही, हर कदम पर लाइन-होटलो की भरमार, दोनो ओर गेहू के लहलहाते पौधे तथा गावो किसानो-ठम्बो मुफसिल-हवाओ के झोके और कोलतार की काली चमचमाती सरसराती-सी जीप मानो किसी ग्रामीण बाला के गदराये बाहो की धर-पकड हो रही हो।

सासाराम पार कर बायी ओर एक गाव किनारे चार-पाच ट्रको को लगे देखा और सरदार जी लोगो को चढते-उतरते तथा दाढी पर हाथ फेरते। दिल मे खट से हुआ। किसी सज्जन ने वर्षो पहले बताया था कि सासाराम से पश्चिम सटे वार-वनिताओ का एक गाव है, ठीक सडक किनारे जहा यात्री दिन हो या रात अपनी प्यास बुझा सकते हैं तथा दिल्ली-कलकत्ता की कमाई का कुछ हिस्सा बीच के इस पडाव मे अर्पित कर सकते हैं। शायद यही था वह गाव जहा मुझे कोई कोठा नही दिखाई

दिया, लेकिन कोठेवालियों के चेहरे उभर आये, जिनका वर्णन अमृतलाल नागर की पुस्तक में 'कोठेवालियां' में पढ़ी थी।

शिवसागर, समावती, मोहनिया पारकर जब कभी बिहार-उत्तरप्रदेश सीमा पर पहुंचा तो गाड़ी रोककर अपने साले को खोजता हूं, जो वहीं ठेकेदारी करते हैं और मिलते ही चाय नाश्ता के अतिरिक्त गाड़ी का भी भरपूर डिजेल का भोजन कराते हैं। यह नाते के अनुसार जरूरी भी है, कारण हर साले का यह पुनीत कर्त्तव्य होता है कि वह 'जीजा जी' के साथ-साथ उनकी सवारी का भी खयाल रखे।

बिहार उत्तर प्रदेश की सीमा पर वाहनों के लिए चेक पोस्ट है। वहां की दुनिया भी निराली है। हजारों वाहन जिनमें नब्बे प्रतिशत तो ट्रकें हैं, तथा सैकड़ों तरह-तरह के साइन बोर्ड जिनके द्वारा ट्रकों को माल आदि ढोने का परिपत्र आदि मिलता है—देखकर सीधा-साधा मन भी घबरा जाता है।

सैकड़ों की संख्या में दोनों ओर गाड़ियां खड़ी रहती हैं और कभी कभी तो दो दो दिनों तक यहां रास्ता जाम हो जाता है।

उस जगह सड़क के दोनों ओर सैकड़ों साइनबोर्ड लगे हैं जो ट्रांसपोर्टेशन का काम करते हैं। इधर का माल उधर, उधर का माल इधर तथा कहां का कोई सामान हिन्दुस्तान के किसी भी कोने में भेजना हो, वहां अपनी-अपनी गद्दी थामे पंडों के समान ही डटे रहते हैं।

एक परिचित-से सज्जन मिल जाते हैं तो पूछता हूं—'भई, यह सब काम क्या है ?

वह मेरी ओर देखकर हंस देते हैं—'यह सब रंगदारी का काम है।

सच में अपने देश में वाहनों के चालकों और उनसे संबंध रखने वालों की बिरादरी ही कुछ और हो गयी है। ट्रक ड्राइवरों का काम भी कठिनतम कामों में है, उनके साथ हनुमान के समान लगे खलासियों की भी अपनी ही भाषा होती है और इस भाषाई संस्कार का गहरा प्रभाव पड़ता है सड़क किनारे के ढाबों पर।

मसलन ट्रक ड्राइवर जब गाड़ी रोकेगा तो चिल्लायेगा—'अबे साले टेनुआ जरा देखना चक्के में हवा कम तो नहीं है ?'

'अभी साले को देखता हू ओस्ताद।'

यानी किसी भी सबोधन मे मगलाचरण की भाषा ही उनकी अपनी है।

बिहार उत्तर प्रदेश सीमा पर सैकडा तो बराबर और कभी कभी हजारा भी—ट्रकें खडी हो जाती हैं। वहा की दुनिया ही कुछ और है। भले आदमी की तो वहा सास घुटने लगे। वहा चारो ओर हर तरह की दुकानें, दुकानो की आड मे मधुशालाओ चकलो तथा अन्य कई प्रकार के धधो का बाजार गम रहता है।

खैर, किसी प्रकार वहा से रास्ता बनाते निकालते उत्तर प्रदेश मे प्रवेश कर गये। वहा सयद राजा तक का रास्ता नरक का ही द्वार है। इतनी खराब जी० टी० रोड की हालत कही नही होगी।

लगता है कि उत्तर प्रदेश सरकार न दिल्ली से सटे अपने पश्चिमी-भाग पर जितना ध्यान दिया है, उसके मुकाबले पूरब खड पर बहुत कम। इसीलिए पूर्वी उत्तर सब तरह से प्रताडित, अविकसित और तबाह है। जिसकी सबसे बडा उदाहरण यह गौरवशाली सडक है।

किसी प्रकार उस रास्ते को पार कर मुगलसराय पहुचे, तब सास मे सास आयी। मुगलसराय म निमल की दीदी और मेरी मुहबोली बहन रहती है, जिनके पास एक ठाव आवश्यक होता है। रीता और रिनी दो भाजियां तथा सुकुमार से उनके अन्य बच्चे मुझे अपने बीच मे पाकर मुदित हो उठते हैं। दीदी के रोये रोये से एक विचित्र सतोष झाकता है और उन्हें लगता है कि मेरे स्वागत मे क्या से क्या कर दे। रीता एम० एस-सी० मे पढती है, लेकिन देखने म बिलकुल छोटी लगती है। मैं छूटते ही मजाक करता हू—'किस क्लास म हो?'

'एम० एस सी० मे।' कहती है।

'धत्, भला तुम्हारे इतनी लडकी हाई स्कूल से अधिक मे नही हो सकती। मुझे बेवकूफ बना रही है।' बडी हसी होती है।

मुगलसराय से वाराणसी की राह मे तीन चीजें मुझे प्राय आकर्षित करती हैं। मालवीय पुल के पहले ही श्रीराम भगवान का आवास, जिसे मठ, मदिर, कुष्ठ निरोध केन्द्र—जो चाहे वह हम कह सकते हैं। दूसरे

मालवीय पुल पर चढते ही मेरी आँखें जो धनुषाकार काशी की शोभा नही देख पातीं, वह पूरब की ओर हरे भरे लता-कुजों मे जाकर अटक जाती हैं—बेसेन्ट कॉलेज, राजघाट स्कूल, ऋषि वैली ट्रस्ट, फाउन्डेशन फॉर न्यू एजुकेशन, कृष्णमूर्तिज एजुकेशनल सेंटर आप—जो चाहे उसका नाम ले लीजिए। मेरे अदर का सस्कार उसी परिधि का विस्तार है। उस मिट्टी को मैं बेहद प्यार भी करता हू तथा श्रद्धा भी, जिसने मुझे अपनी गोद म रखा, भविष्य के लिए एहसास का मच दिया, जीवन मे सौरभ, कान्ति, विश्वास और सस्तुतियो की रचना की। भला म जीवन के अनमोल क्षण—उन्हें कोई कसे भूले ? तभी तो पुल पर चढते ही वह परिवश मुझे अपनी ओर खीचने लगता है—मैं पहले उसे नमन करता हू तब बाबा विश्वनाथ को।

उस परिवेश पर नजर जाते ही मुल्लू जी की, मदनमोहन पाडेय की, विश्वनाथ लाल जी की, लक्ष्मनाथ जी की, रामचन्द्र राव की, जे० पी० जी की याद अतीत को वतमान से जोडती है। अच्छा किया आनन्द ने कि वही रह गया।

तीसरी चीज जो मुझे आकर्षित करती है वह है, 'सव सेवा सघ' का कायालय-परिवेश—जो पुल पार करते ही दायी ओर मिलता है। जयप्रकाश जी जब-तब यहा आकर रहते थे तथा देश के हर सर्वोदयी नेता का इससे सबध लगाव है।

पिछली बार यहा आया था तो आचाय राममूर्ति मिले थे। और जब कभी भी यहा आता हू, सौ पचास-हजार की पुस्तकें अपने लिए तथा 'पारिजात' के लिए ले जाता हू।

सभव है कि वतमान चर्चाओं के अनुसार सर्वोदयी सस्थाओ मे कुछ भ्रष्टाचार हुआ हो, लेकिन मेरी समझ म उसकी मात्रा नगण्य है। आखिर सर्वोदयी कायकर्त्ताओ का जीवन-क्रम भी मैं देखता हू तो पाता हू कि पहनाव-ओढाव, रहन-सहन, प्रवृति—सबो मे अभी भी सादगी है। उसमे रचनात्मकता है। फिर सभी को ढोगी कहना गलत और अनुचित है। अभी भी ऐसे केन्द्रो, सस्थाओ, सघानो तथा जगहो म गाधी जीवित हैं।

काशी पहुच गया। हमने जब काशी आना प्रारभ किया था बचपन मे

11

तो यह बनारस था और यहा पुल नही था। पीपे के पुल से होकर हम नगर मे प्रवेश करते थे या फिर नाव से। भला हो सन इंजीनियर महर्षि विश्वेश्वरैया का, जिन्होने एक दिन के लिए भी रेला का आवागमन बद नही किया और ऊपर से इतना विशाल पुल बना दिया। और विशेष तौर से यह 'मदनमोहन मालवीय सेतु' केवल आवागमन के लिए ही आदर्श नही है—काशी की शोभा देखने, हवाखोरी करने और मा गगा को अपलक आखो निहारने का भी एक सशक्त ठाव है।

काशी मेरे पडाव की जगह है। कारण, मैं सडक माग से दिल्ली की राह मे हू और भला यह कैसे सभव है कि एक बार भी काशी मे रहा आदमी काशी मे बिना ठहरे चला जाये। दुनिया के अनेक देश, नगर, महानगर, परिवेश देखकर भी वह सुख-शाति कहा, जो काशी मे है।

सच मे काशी तीन लोक से न्यारी है। यहा की शोभा, सस्कृति, मर्यादा, तहजीब—जो भी है, उस पर काशी की अपनी निजता और छाप है। यह कोई खरीद बिक्री की वस्तु नही, क्योकि यह कोई 'ट्रेड माक' नही है लेकिन रिक्शाचालक से लेकर पान की गिलौरी लगाने वाले मे तथा कोठे पर बैठी वार वनिता से लेकर विश्वविद्यालयो के महापडितो मे भी काशी की परम्परा और अहलेपन का जो दशन होता है—उसे हम केवल 'बनारसी' कहकर सतोष करना चाहे तो भले कर लें, लेकिन वास्तविकता यह है कि काशी कोई व्यवस्था, वाद, पथ या मोह नही है, काशी करवट या विश्राम भी नही है, काशी मात्र धम और कम नही है—काशी एक सतत प्रवाह है, जैसे गगा की धारा और जिसने उस धारा मे डुबकी न लगाई उसका जीवन भी व्यथ गया।

और अब मैं यहीं रुक रहा हू। क्योकि मैं धारा के न तो पार जाना चाहता हू और न गगा के किनारे खडे होकर लहरो को गिनना मेरा प्रतिपाद्य है—मैं तो बीच धार मे एक बार डुबकी लगाकर यह देखना चाहता हू कि सच मे नियति क्या है?

लीक छोड़ तीनों चले

सोचता हूं कभी-कभी अपने बारे में तो पाता हूं कि मेरा जीवन एक क्रमहीन यात्रा ही तो है। आज यहां, कल वहां। सुबह कहीं, शाम कहीं।

और इसी क्रमहीन यात्रा के सिलसिले में सड़क-मार्ग से और वह भी जीप द्वारा तथा चालक स्वयं मैं, पटना से दिल्ली की यात्रा पर निकल पड़ा हूं।

राजकपूर की किसी पुरानी फिल्म का गाना रह रहकर कानों में गूंज रहा है—

'निकल पड़ा हूं, खुली सड़क पर
अपना सीना तान।
मंजिल कहां, कहां रुकना है
ऊपर वाला जान।'

ठीक यही नियति-सद्गति है अपनी भी, लेकिन सीना तानकर निकल पड़ा हूं पटना से दो बजे अपराह्न में। सामने ही कुछ देर में सूरज भी अगवानी के लिए पहुंच गया है और ज्यों ज्यों हम आगे बढ़ रहे हैं, सूरज ढलता जा रहा है यानी हमसे विदा ले रहा है। और मैं जानता हूं कि इस सूरज का अर्थ क्या है आज हमारे लिए। केवल रोशनी नहीं, रक्षा भी। यानी यह डूबा नहीं कि बिहार में रास्ते सुनसान होने लगेंगे और फिर रात का आलम किसी और के हाथ में होगा।

लेकिन यदि मैं ही परवाह करने लगा रातों और रास्तों की—तब फिर 'मैं' कहां रह जाऊंगा। मेरा जीवन तो बस ऐसा ही तूफान, बावास,

झझावात है कि बहा, चला, रुका—लेकिन मुर्झाता नही हू। जीवन मे हर कही सघर्ष और 'रिस्क'।

गाडी मे ब्रेक देना पडा, पहली बार कोइलवर पुल पर—'मौला मजहरुल हक सेतु'। शोण नदी पर बना वह विशाल पुल। यह न होता तो आवागमन के रास्ते हमारे लिए दूभर हो गये होते।

शोण नदी! जहा अन्य नदिया नारियो के समान शृगारिक है, वहीं शोण पुरुष है और आय पुरुष के स्कधो के समान तेजामय व्यक्तित्व लिए विशाल फैलाव रखता है। दो-तीन किलोमीटर का पाट तो शोण के लिए आम बात है।

विचित्र दिन चुना है हमने भी आज का। हर जगह सरस्वती प्रतिमा के विसर्जन की धूम है और उसी के अनुसार धडाका भी—

वीणापाणि की— जय, जय!'
सरस्वती पूजा—'हम करेंगे, हम करेंगे।'

अधिकतर प्रतिमाए ट्रैक्टरो पर ही नदिया म विसर्जित होने जा रही हैं। कही रास्ते जाम हो जाते हैं। कभी-कभी आध घटे, पूरे घटे रुकना पडता है। और यही क्रम लगातार रहा—पटना से बक्सर तक।

विचित्र बात एक और भी है, कि अधिकतर सरस्वती पुत्र ही आज अपनी परिधि से बाहर हैं। लूट, हत्या, बलात्कार, भ्रष्टाचार मे भी सरस्वती पुत्र किसी से पीछे नही। और सरस्वती-पूजा के नाम पर बहुत जगहो मे जो चदे की उगाही होती है, उसका भी बडा भाग सरस्वती पुत्रो द्वारा अपनी मस्ती या बहोशी के लिए ही खच होता है।

खर, बक्सर के बाद कुछ राहत मिली और बिलकुल नयी सडक हमने पकडी—चौसा, जमानिया सैयदराजा, मुगलसराय, वाराणसी—जो हमारा आज का मन्तव्य पडाव था।

आगे का रास्ता कैसा है?—मैंने शाम ढलते देखकर बक्सर मे किसी गाडीवाले से पूछा—तो वह बोला कि 'बस, निकल भागिये बिहार की सीमा से जल्द से जल्द, फिर यू० पी मे कोई खतरा नही है।'

ऐसी तो इन दिनो साख है बिहार की।

किसी से अब यह प्रश्न पूछिए कि यह रास्ता कैसा है तो वह सीधा अर्थ सुरक्षा की दृष्टि से ही बतायेगा। कमनाशा पर बने नये पुल को पार कर हम उत्तर प्रदेश में लगभग आठ बजे रात म पहुंचे और वहां से दिलदार नगर, जमानिया तब सयदराजा में जी० टी० रोड, जो अब शेरशाह सूरी पथ है—न० २ राष्ट्रीय माग। इस सडक पर पहुंचने पर फिर कोई खतरा नजर नही आता।

सयदराजा म ही सडक किनारे के होटल म रुककर खाना खाया, जो घर से लेकर चला था—सत्तू भरी पूडी, अचार मुजिया। लाज बचाने को दुकानदार से थोडी सब्जी ले ली।

बनारस पहुचा—इत्मीनान और आराम स ग्यारह बजे रात म। और उस समय भी बनारस की हर गली, सडक मुहल्ले म जीवन्तता थी। पान, चाय, नस्तो मिठाई, दूध की दुकानों पर बनारसी ग्राहकों का जमघट उस शहर की चेतना का प्रतिबिम्बित कर रहा था। बिलकुल सही बात थी कि 'बनारस म न बिन रस कोई।'

इधर कुछ दिना से ठहर रहा हू महाराजा होटल म जो नाम का ही महाराजा है, काम का प्रजा। उसी की प्रजा मैं भी बन गया।

यही पर हमारा पहला पडाव पडा।

दूसरे दिन काशी से विदा होते-होते तीन बज गये। काशी मेरे सस्कारो की जननी तथा सवेदनाओ की भगिनी है। जो भी मेरा प्रारंभिक सीख और नीव है यही की, फिर इस कम भूल जाऊ।

अत 'सकटमोचन' गया, अनिरुद्ध के घर गया, हिन्दी प्रचारक गया, एक दो और मित्रो स मिला, जिनम प्रमुख पुरुषोत्तमदास मोदी और विजय चेरी हैं। दोना की बातें कभी भूले नही भूल सकता।

काशी की मिट्टी मे गरिमा है तथा बौद्धिक प्रखरता है। तभी तो विश्वविद्यालय प्रकाशन म बठे मोदी जी का नैतिकता की चिन्ता व्यवसाय से बढकर है और अपना अधिकाश समय 'मुमुक्षु' मे ही देते हैं।

और विजयचन्द्र चेरी, उन्होंने चाय-पान के बीच एक ऐसी बात कही, जिसे भूल नही सकता।

खाने पीने की बात चली तो विजय बोले— मत कहिए, जमाने के

साथ-साथ खाने का रंग-ढंग भी बदल गया है। पहले यदि आठ-दस रोटियां वह भी घी में सनी चुपड़ी नहीं खाते थे तो मां को संतोष ही नहीं होता था, लेकिन अब चार से पांच हो जायें तो पास ही बैठी पत्नी कह उठती है—'ज्यादा मत खाइए, आपका वजन बढ़ रहा है।' और कहीं घी में चुपड़ी, तली खाते देखें तब और आफत—

'आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान ही नहीं रखते।'

'क्या अंतर है मां की ममता और पत्नी के प्रेम में ?'

विजय जी ने विदा लेकर होटल से सामान उठाया और अनिरुद्ध के घर भोजन कर इलाहाबाद की ओर सरपट गाड़ी दौड़ा दी। अनिरुद्ध की पत्नी बहुत लावण्यवती तथा सुशील महिला है। सेवाव्रती भी। इतनी बड़ी हो गयी—तीन बच्चों की मां, फिर भी बहू या दुलहन के समान ही व्यवहार करती है। यों सामने सिर से आंचल नहीं गिरने देती है तथा जाते आते बिना मेरे पांव छुए संतोष नहीं होता। मुझे उसकी यह आत्मीय और पारिवारिक परम्परा बहुत अच्छी लगती है।

तो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की बगल वाली सड़क पकड़कर मडुआडीह में जी० टी० रोड पकड़कर सीधा इलाहाबाद की ओर चला। बहुत अच्छी सड़क, दोनों ओर सघन पेड़ और खेतों में लहलहाते दलहन-तिलहन। काशी और प्रयाग के बीच रास्ते में एक चीज जो हर जगह दिखाई देती है वह है दरी कालीन। औराई, भदोही आदि जगहों में इस समय कालीन की कई कम्पनियां खुल गयी हैं और गांव गांव तथा घर घर में कालीन की बुनाई होती है और बड़ी जगहों के सेठ साहूकार बुनकरों से कम दाम में कालीन खरीदकर दस दिना बाहर निर्यात कर रहे हैं। हर ओर साइकिल, ठेला, स्कूटर कार, जीप पर कालीनों तथा दरियों की ढुलाई होती देखी तथा रास्ते भर सड़क किनारे बुनकरों का कालीन बुनना।

लेकिन बीच रास्ते में मेरी नजर जहां ठहर गयी, वह था गांधी आश्रम का 'चर्मोद्योग-केन्द्र'। मैंने जीप रोक दी, अन्दर गया, जूता देखने लगा। खादी की मटमैली धोती-कुरता पहने एक सज्जन दिखाई पड़े तो मेरे मुंह से अनायास निकला—'आप तो स्वतंत्रता सेनानी दिखायी देते हैं।'

'जी हां, हू।' वे सज्जन मूंछ घूटते हुए बोले।

भला क्या जमाना आ गया है—मैंने सोचा—स्वतंत्रता सेनानियों के जिम्मे अब यही जूता चप्पल और आज के दस्यु, उचक्के, गिरहकट—सब के-सब राजतंत्र के प्रहरी।

मैंने उन स्वतंत्रता सेनानी के सौजन्य की खातिर पचास रुपयों में एक पम्प शू ले लिया। मजबूती में जूता किसी प्रकार कम न था, लेकिन फिनिशिंग ठीक नहीं थी। इससे क्या होता जाता है—मैंने अपने मन को समझाया।

रास्ते में चलते चलते रुककर थोड़ा सुस्ताना और लाईन होटलों में चाय खीर 'तड़का' खाना आनन्द मी हो गयी है। बनारस और इलाहाबाद के बीच में इसके लिए रुका। अब मील का पत्थर बता रहा था कि इलाहाबाद मात्र पंद्रह किलोमीटर है। स्टीरिंग से मेरा हाथ गालों पर गया—खुरदुरापन। याद आया भाग-दौड़ में दाढ़ी नहीं बना सका था।

और आज समय का तकाजा है कि सभ्य कहलाने के लिए दाढ़ी बनाओ, क्लीन शेव रहो और मुंह में अधिक जूतों को चमकाकर रखो।

मैंने सड़क किनारे पेड़ की छांव में सलून का प्रतिरूप देखा तो गाड़ी रोक दी और दाढ़ी बनाने बैठ गया। इलाहाबाद प्रवेश के पहले सभ्य आदमी बनना आवश्यक था।

और उसके बाद पहुंचा इलाहाबाद—करीब शाम को साढ़े चार पांच बजे। वाराणसी से इलाहाबाद का रास्ता बड़ा खुशगवार है। जी० टी० रोड जिसे पिछले दिनों शेरशाह सूरी पथ नाम दिया गया है, उसके निर्माता को इतने दिनों बाद याद किया गया।

दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्ष, लहलहाते खेत, अच्छे भले लोग, अच्छी अच्छी लाईन होटल और जगह जगह पड़ाव। पूरे रास्ते में ऊन तथा कालीनों की भरमार दिखाई देती है। करोड़ों का कालीन इस क्षेत्र का निर्यात होता है। भाग्य जरूर पलटा खा रहा है बुनकरों का, तभी तो हर गांव-कस्बे की रौनक बढ़ी हुई है।

और ऐसे होकर रुके धरते इलाहाबाद पहुंचे, जब सूरज डूबने की तैयारी कर रहा था। लालबहादुर शास्त्री पुल पर गाड़ी चढ़ी नहीं कि दोनों ओर

की अर्द्धकुभीय भ॒यता, आध्यात्मिक श्रद्धा और रौनक दिखायी पडी। हजारो-हजार तम्बू, उनकी शिराओ पर फहराते धम ध्वज, बालुओ पर पडे साधु-स॒यासी-श्रद्धालु भक्त यह दुनिया ही कुछ और है।

मेला समाप्त हो गया है, लेकिन अभी भी भक्त जुटे हैं, पूर्णिमा तक अपना अखाडा रखेंगे। हर जगह श्रद्धा-भक्ति धर्म परम्परा जाग रही है।

सबसे पहले मिलने गया अमत राय से, जि॒हे मैं प्रेमच॒द की धरोहर मानता हू। इधर अमृतजी और सुधाजी दोनो से अच्छा सम्पक हुआ है, दो-तीन वर्षों से। हैं भी दानो सहनशील भावुक, मेहमाननवाज और अपने सा।

प्रेमच॒द जी की याद—'धरोहर'—अमतराय और सुभद्राकुमारी चौहान की याद—धरोहर सुधाजी। एक सयोग ही ता कहा जायेगा कि आज के चालीस-पतालीस साल पहले दोनो महान साहित्यकारा के पुत्र और पुत्री अ॒तर्जातीय सूत्र म बधे और उसका भरपूर निवाह किया।

अमतजी ने अपने आवासगह का नाम रखा है—'धूपछाह'। इसे किसी अग्रेज ने बनवाया था, कालातार मे अमृतराय ने इसे खरीदा और रखा भी है अपने ही सुरुचिपूर्ण ढग से।

भव्यता और कलात्मकता है पूरे परिवश मे।

बडे उत्साह से दोनो मिले। घटी बजाने पर पहले सुधाजी निकली, तब आये अमत जी, जि॒हान हार्निया का आपरशन करवाया है। कमजोर से लगे और सहज अस्त व्यस्त, जो उनके रहन सहन जीवन की 'स्टाइल' है।

नाश्ता चाय के साथ ही अनौपचारिक बातें भी होती रही।

'मुझे हि॒दी के आलोचक क्या नही समझ पाते हैं या मेरे साहित्य के प्रति क्या नही॒याय कर पाते है?' पूछा अमतजी ने।

'बात यह है कि आप किसी गुट म अपने को फिट नही कर पाते है तथा न तो देश या राज्य की राजधानियो मेंजो हिसाब किताब इन दिनो बैठाया जाता है होटलो, कॉफी हाउसो, बारो और क्लबो की दुनिया को ही गुलजार करते हैं—फिर आज के समीक्षक-आलोचक खुश कैसे हो?' मैंने

कहा।

'इसके साथ ही हर समीक्षक आपको प्रेमचन्द का पुत्र होने के नाते उसी अनुपात मे देखने की कोशिश करता है। यह दूसरी निराशा की बात है।' मैंने कहा—तो वे मेरे उत्तर से सतुष्ट हुए।

फिर कुछ बातें होती रही वर्तमान हिन्दी प्रकाशन और पुस्तक व्यवसाय पर। हम दोनो सहमत थे इस बात से कि आज के प्रकाशन व्यवसाय को कतिपय प्रकाशको ने 'करप्ट' कर दिया है तथा हम लोगो के समान मर्यादित व्यक्तियो के बलबूते की बात नही है कि इस प्रकार स्तर से नीचे गिरें।

सुधाजी के साथ ही महादेवीजी से मिलना गया। वह अस्वस्थ थी, फिर भी घर से बाहर आकर मिली—बहुत अनौपचारिकता के साथ।

छिहत्तर-सतत्तर वर्षों की आयु म भी सजीव चेतना, अहर्निश विश्वास। अनेक बार सोचा था कि उनके घर पर मिलूगा, बातें करूगा, आशीवाद लूगा तथा उनकी पुस्तको पर उनके हस्ताक्षर लूगा। दजन बार से अधिक इलाहाबाद आया गया, लेकिन मिलना नही हुआ था। आज वाराणसी से भागा भागा इसी महत काय से आया था।

महादेवी, जो प्रसाद पन्त निराला के बाद छायावाद के चार स्तभो म से मात्र शेष अब एक स्तभ हैं। मैं जगन्नाथ पहाडिया नही, जो उनकी कविताओ को न समझू—समझा है वेदना, दुख, ताप और सत्रास स भरपूर उनकी काव्य चेतना को और इसीलिए महादवी जी को साक्षात सरस्वती रूपा समझ रहा [redacted]। सहारा देकर उन्हे ले आए डॉ० रामजी पाण्डेय जो उनके लिए पीरबावर्ची भिश्ती-खर के समान हैं। निष्ठा और मनोयोग से पति पत्नी ने महादवी जी को सभाला है, सहारा दिया है।

आज ही मैंने आपका लेख 'धमयुग मे पढा है। बहुत अच्छा लिखा है। अच्छा किया जो राजनीति छोड दी। मेरे प्रणाम के पहले ही महादेवी जी ने कहना शुरू किया।

मैं मुसकराया, वह फिर बोला—'राजनीति शराब है, नशा चढता है तो उतरता ही नही है।

मैंने इसमे पुट दिया— जसे पहाडिया जी को। मैंने 'अभिरुचि मे एक

लेख इस सदर्भ मे लिखा था।'

'मैं 'धर्मयुग' मे आपको बराबर पढ़ती रहती हू। देखा नही कि पढा।' महादेवी जी का इतना मात्र कहना मेरे लेखन का सर्वोत्कृष्ट सम्मान कहा जायेगा।

मैंने उनके स्वास्थ्य का हाल जानना चाहा, तो बोली—'बीमार हू, पर मरूगी नही।'

इस पर सुधाजी ने टोका—'आप ही तो मेरी एकमात्र मौसी बच रही हैं, इस तरह की अशुभ बातें मुह से न निकाला करें।'

मैं अपने साथ महादेवी जी की पुस्तकें लेकर गया था, उन पर उनसे हस्ताक्षर करने को कहा, तो इस अस्वस्थता म भी उन्होने अपनी आठ पुस्तकें, जो मेरे पास थी, उन पर गद्य या पद्य की सटीक पक्तिया लिखते हुए हस्ताक्षर किये और बाद मे सावधानीपूवक उन्ह पढा, तब दिया। जसे 'यात्रा' पर उन्होने लिखा—

'अश्रुकण स उर सजाया
त्याग हीरक हार,
भीख दुख की मागने
फिर जो गया प्रति द्वार
शूल जिसके फूल छू
चन्दन किया सताप
सुन जगाती है उसी
सिद्धाथ की पगचाप
करुणा के दुलारे जाग।'

महादेवी २२८२

इससे यह घोषित होता है कि महादेवी जी अपनी पक्तिया मे जीती हैं। मरते हुए जीना और जागते हुए जीना—'उनका जीना जागते हुए है।' तभी तो बिहार जाने की बात चली ता वह बोली—'वहा तो दोना नेत्रो की ज्योति भी छीन ली जाती है। मैं जहा की हू, वहो की यह बात है।

मैंने बताया कि मैं जीप द्वारा पटना से दिल्ली की यात्रा म हू, अत

अभी ही जाना है, रात कानपुर में रुकूँगा, तब वह बोली—'तो जल्दी जाइए नहीं तो रास्ते में छीन लिये जाइएगा।'

इसीलिए तो मैंने आपका हस्ताक्षर लिया है कि उसे दिखाकर ही छूट जाऊंगा।' मैंने हसते हुए कहा।

मुझे उनके स्वास्थ्य का भी खयाल रखना था कि उसके प्रति भी अत्याचार न हो। मैंने 'मुक्तकंठ' का नया अंक तथा अपनी दो पुस्तकें उन्हें भेंट की।

वहीं डॉ० रघुवंश मिले। मैंने उन्हें कहा—'आप तो रिटायरमेंट के बाद और भी जवान तथा 'फ्रेश' लग रहे हैं।'

कई सारी बातें और भी औपचारिक-अनौपचारिक हुई और मैं विदा हुआ—कानपुर की ओर, दिल्ली की राह में। जाड़े में साढ़े सात बजे ही पूरी रात लगती है तथा मौसम भी खराब और जाड़ा भी अपनी जवानी पर।

इस प्रकार इलाहाबाद की संक्षिप्त यात्रा पूरी की महादेवी जी अमृत राय जी तथा रघुवंश जी से मिलकर। यानी संगम में स्नान नहीं किया, लेकिन त्रिवेणी के दर्शन जरूर किये।

इस शहर की यही तो मर्यादा है, एक ओर सुप्त सरस्वती की धारा और दूसरी ओर वीणा-वादिनी की अनेक कृपा—इलाहाबाद, प्रयाग अथवा तीर्थराज।

याद आया मुझे, परसों ही तो 'सरस्वती पूजा' के दिन सबको प्रतिमाएं देखी थीं, लेकिन महादेवी जी साक्षात् सरस्वती थीं।

एक बार फिर कश्मीर मे

इस बार पुन कश्मीर आया हू—कानन रश्मि के साथ। और बार बार याद कर रहा हू आज से तेरह चौदह साल पहले की कश्मीर-यात्रा, जब रश्मि तीन साल की थी, राजेश पाच साल का और रजन सात साल का। तीनो बच्चो के साथ आने को तो आ गया था, लेकिन हमारा शौक भले हो, हैसियत आने की न थी।

याद है, पटना से जब चला था तो मात्र ढाई-तीन सौ रुपये थे, एक जगह से दानापुर मे पैसा मिलने वाला था, जो नही मिला और तब भी हमने ठान लिया था तो लौटे नही, चल पडे। भानुजय भी साथ था।

याद है, जब हम दिल्ली पहुचे तो वहा पटना से भिजवाया ट्रेन-आरक्षण का सवाद गायब था और टका सा जवाब मिला कि अगले सत्रह दिनो तक कोई जगह किसी ट्रेन म नही है। तब हमारी बुद्धि ने साथ दिया—डा० रामसुभग सिह उन दिनो केन्द्रीय रेलमन्त्री थे, उनसे मिला और तीसरे दर्जे मे पाच आरक्षण की माग की। वहा बैठे एक नेता से सज्जन इस बात पर चिहुक पडे थे—क्या साहब, आप कुछ समझते नही है, इतना छोटा-सा काम कहा जाता है।

लेकिन डॉ० रामसुभग सिह की महानता थी, जिन्होने यह कहते हुए उस क्षण को उबार लिया था—भला इसमे कौन-सी बात, इन्हें इस समय यही काम है तो और दूसरा काम क्यो कहेगे। और उनकी कृपा से हमे उसी दिन आरक्षण मिल गया था।

याद है हमे कि पठानकोट पहुचकर श्रीनगर के लिए बस पकडने मे कितनी मारा मारी हुई थी, तब हम कही सफल हुए थे जगह लूटने मे।

और तब चूंकि बस एक दिन म ही नहीं आ सकती थी, अत रात भ हम बटोट मे रुके थे—छोटे-स एक होटल मे, शायद बीस-बाईस रुपय का कमरा लेकर। दूसरे दिन श्रीनगर पहुचकर हमने 'हाउस बोट' पर रहने का अपना शौक पूरा किया था, लेकिन उसके बिल की पूर्ति अपना पेट काटकर यानी ब्रेड-बटर या फिर चपाती और रोटी खाकर हमने की थी।

भानुजय ने जब हमारा यह हाल देखा तो सौ दो सौ रुपये जो भी उसके पास थे, उसने हमे सौंप दिये। और उसी फाकामस्ती म शिकारे से लेकर बस तक, चश्माशाही स लेकर निशात तक पहलगाव स लेकर गुलमर्ग तक हमने कश्मीर दर्शन का शौक पूरा किया था।

हम जब किसी होटल मे जाते थे तो यही फिक्र होती थी कि हमारा बिल दस रुपया से अधिक न हो, लेकिन छोटा राजेश अण्डा और मीट खाने के लिए मचलने लगता था और इसी प्रकार छोटी रश्मि बाजार मे छोटी मोटी चीजो को खरीदने के लिए हाथ पकडकर लटक जाती थी तथा आगे बढने के लिए तयार ही न हो। तब तो उसे घसीटकर आगे बढाते थे या फिर डाटते थे और कभी कभी तो मा उसे इस जिद् के लिए चपत भी लगा देती थी।

और ऐसे ही करते-करते हमने एक सप्ताह काट दिया और जब जाने के लिए हम बस पकडने गए तो पता चला कि चार दिनो तक कोई सीट ही नही है पठानकोट जाने के लिए। और इधर हमे काटो तो खून नही। हमारे पास शुद्ध रूप से एक दिन भी रहने के लिए पैसे न थे। अब चार दिनो का अथ होता था, किसी भी रूप मे कम-से कम तीन-चार सौ रुपयो का खर्च—कि तभी कानन ने अलग ले जाकर मुझे अपने गले की चेन और अगूठी दिखलाते हुए कहा कि चलिये इसे बेच दिया जाय।

भानुजय तथा बच्चो को टूरिस्ट सेण्टर के पास छोडकर हम दोनो बाजार गये तथा किसी चोर के समान अपना ही सोने का गहना बेच आये। काइया सुनार इस बात को समझ गया और उसने मुश्किल से ढाई सौ रुपये दिये, जो हमारे लिए मृत-सञ्जीवनी बूटी थे। पसे लकर हम कम-से कम पैसो का होटल खोजने लगे और बहुत मुश्किल से पचीस रुपये रोज का एक गन्दा, महकता हुआ, सीलन भरा एक कमरा मिला,

जिसमे हमने चार दिन और चार रातें काटी। हमारे लिए भरपूर खाना भी मुश्किल था, क्योकि उस समय भी चार आदमियो के पूरा खाने का अर्थ था कम से कम पचास रुपये और हमारा बजट कहता था कि पाच रुपये से अधिक एक शाम का खर्च खाने पर न करू।

उसी बीच रेगिस्तान मे सोते के समान मिल गये मेरे एक मित्र श्री चन्द्रदेव सिंह, जो कलकत्ता से अपने स्कूल का ट्रिप लेकर आये थे और नजदीक मे ही पूरे काफिले के साथ एक होटल म ठहरे हुए थे। खाना बनाने को साथ ही स्टाफ आदि आया था। उन्होंने स्वय यह आफर दिया कि हम लोग उनके मेस म ही खाना खाया करें, बाहर खाना खाने से पेट भी खराब होने का डर रहता है।

भला नेकी और पूछ-पूछ, इससे बडा वरदान हमारे लिए और क्या होता! एक दिन हमारा शेष था, हम बडे चाव से दो जून उनके मेहमान रहे तथा पठानकोट के लिए जब विदा हुए तो उन्होंने रास्ते के लिए पूडी-सब्जी बनाकर दे दिया। उस समय वह पाकर यही लग रहा था माना हमारे भाग्य से ही उनका यहा आना हुआ है, जसे बिल्ली के भाग्य से छीका टूटता है।

उन दिना जम्मू तक ट्रेनें नही आती थी। अत पठानकोट पहुचे और वहा आरक्षण मिलने का तो सवाल था नही, अत भेड-बकरो के समान श्रीनगर मेल मे सपरिवार लदकर हम 'राम-राम' करते दिल्ली पहुचे और स्टेशन से उतरकर सीधे श्री सीताराम केसरी के निवास पर गये जो उन दिनो लोकसभा के सदस्य थे तथा मीनाबाग मे रहते थे। टक्सी से उतरते हुए हसकर मैंने उनसे सौ रुपये मागे, तब टैक्सी का किराया दिया, वरना हमारी इज्जत वहा भी खतरे म थी, क्योकि हमारी जेब मे मात्र दो या तीन रुपये थे और टैक्सी का किराया लगभग दस रुपये था।

लेकिन आज एक बार फिर मैं उसी कश्मीर मे हू। आज मेरी स्थिति न तो पहले वाली है और न बीच वाली। स्वर्ग के जिस टुकडे को उस दिन ललचायी आशा से देखा था, वहा सोचा था कि एक दिन हम इसमे एक सम्मानित मेहमान होंगे। आज मैं एम० पी० भी नही हू—लेकिन डॉ० साहब का व्यक्तिगत मित्र हू और हमारी यह व्यक्तिगत मित्रता

पारिवारिक अपनापे का रूप ले चुकी है। डॉ० कण सिंह का स्नेह मेरे ऊपर एक भाई के समान रहता है और उनसे भी दो कदम स्नेह वर्षा में आगे हैं महारानी यशोराज्यलक्ष्मी।

पटना से 'हिमगिरि' से हम जम्मू उतरे जहां हमारे स्वागत में डॉ० साहब के सचिव दो गाड़ियां के साथ उपस्थित थे और वहां से तवी के किनारे स्थित 'हरि महल' गये—जिसकी शोभा और प्राकृतिक सुषमा किसी को भी विभोर बना दे।

जम्मू वैष्णव देवी का दर्शन करने गये, जो हर दृष्टि से एक अनिर्वचनीय अनुभूति कही जायगी। जिस प्रकार तेरह चौदह किलोमीटर की चढ़ाई घोड़े से चढ़कर गुफा में लेटकर माता वैष्णव देवी के मन्दिर में प्रवेश किया जाता है यह अद्भुत रोमांचकारी और आध्यात्मिकता से भरपूर अनुभूति है, जिसका वर्णन सम्भव नहीं यह स्वयं अनुभव किया जा सकता है। और उसके बाद कुद, कटरा, बनिहाल आदि परिचित स्थानों को पार करते हुए रात दस बजे के बाद श्रीनगर पहुंच गये और ठहराया गया डा० साहब के निजी अतिथि गृह 'कर्ण-महल' में ही।

कर्ण महल से डल की खूबसूरती, हिमालय की उपत्यकाएं, शंकराचार्य का मन्दिर श्रीनगर की रौनक सब दिखाई देती हैं। किसी स्वप्न के समान पहाड़ की तलहटी पर स्थित है यह महल जो समृद्धि से अधिक सौन्दर्य का और सौन्दर्य से अधिक सुरुचिपूर्णता का प्रतीक है। इसके आसपास का वातावरण, सामने सेव, चेरी, अंजीर, बादाम और खुमानी के बाग पर और सफेदा की पांत, चिनार और देवदार के पेड़, फूलों पातों की बहार, हिमभरी हवा और मादक सुरभि सब मिलकर अनाड़ी को भी कवि और कवि को चित्रकार बना देने की क्षमता रखते हैं।

डा० कर्ण सिंह तथा महारानी दोनों हर वक्त इस बात के लिए अति सावधान रहते हैं कि किसी तरह की तकलीफ न हो तथा अधिक से अधिक सुविधा मिले।

भला ऐसे मेजबान को पाकर हमारे जैसे मेहमान का पानी पानी होना स्वाभाविक है। खाने की मेज पर वीसों एक से अनेक स्वादिष्ट डिशेज। स्टेट गेस्ट तो पहले भी रहा था लेकिन किसी महाराजा का अतिथि पहली

ारिक रूप मे हुआ। जिस अतिथिगह मे हम ठहरे हैं, उसमे
, राजीव और सजय के साथ, रह चुकी हैं तथा माउण्टबेटन से
से अनेक लोग अतिथि बने हैं।
बार पारि आराम और सुविधा किसी फाइव-स्टार होटल मे ऐसी मिलेगी,
इदिरा ज ल रही हैं।
लेकर एक साहब तथा महारानी दोनो की महानता है कि हमे बिलकुल
क्या तल पर भाई के समान लिए हुए हैं। वामन और रश्मि तो
जो यहा मि थिय प्रसन्न हैं। ऐसा परिवेश प्यार, मेहमान, नवाजी आज के
डॉ० स्वार्थ रूप से शायद ही कही मिले। डा० साहब का पूरा
समान धरा ज्योति, विक्रम धीरेन्द्र जी सभी हम सबो से खुले, घुले मिले हैं
मुझसे भी का नाती है डॉ० साहब का—विवस्वत (बेबी)। ऐसा प्यारा
युग मे निखा नही। फूल-सा कोमल, हसी-सा गुदगुद, प्यार-सा पल्लवित
परिवार—ी की बहार के समान मस्त। इसे देखकर पता नही क्यो मुझे
और गजब रफी के बच्चे की याद आ जाती है, हालाकि मरफी का बच्चा
बच्चा तो थ है, ज्योति का बच्चा गोद का।
और मौसम मानते हैं कि विक्रम युवराज हैं तथा ज्योति युवरानी। यहा के
बार बार मेर और श्रद्धा से यही उन्हे सम्बोधन भी करते हैं, लेकिन हम
कैलेण्डर क पनवश उन्हे विक्रम और ज्योति ही कहते हैं।

हम ज आखिरी दिन श्रीनगर की चहलकदमी मे, खरीदारी मे, चश्मा-
कारिन्दे प्य परी महल मे बिताने के बाद शाम को शालीमार मे 'प्रकाश
सभी अपना पर आधारित रूप-नाट्य अथवा कथासार भी देख आया।

आज र कश्मीर आना हमारे लिए वसी ही मधुर उपलब्धि है, जैसी
शाही और नो की प्रतीक्षा के बाद घर मे सन्तान की उत्पत्ति।
और ध्वनि'

इस बा
कि बहुत दि

खण्डहरो मे भटकती आत्मा

'जहि मण पवन न सचरई,
रवि ससि नाहि पवेस।
तहि वढ चित विसाम करू,
सरहे कहिन उएस॥'

मेरे कानो मे यह गुनगुनाहट सुनाई देती है। आसपास, बाएं-दाएं देखने लगता हू तो खण्डहर-ही-खण्डहर! तब यह आवाज कहा से आ रही है, कौन है वह जो बोल रहा है, बतिया रहा है, उसासें ले रहा है, साहित्य और साधना का मणि-काचन सम्बन्ध स्थापित कर रहा है!

यह आवाज है सिद्ध-सन्त सरहपाद की और सामने के खण्डहर हैं नालन्दा के। चौरासी सिद्धो म छत्तीस सिद्ध इसी भूमि के आस-पास पैदा हुए और उन्होंने सहज साधना की पद्धति मे अपने को कभी वज्रयानी तो कभी हीनयानी, तो कभी वाममार्गी सिद्ध किया, लेकिन साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दी के आदिकवि भी यही थे, यानी—सरह, सरहपाद।

जनसहार की पृष्ठभूमि

नजरें पीछे की ओर मुड जाती हैं। यह क्या? धुधुआती नही, चिघाडती आसमान को छूती लपटें उठ रही हैं—सातवी से लेकर बारहवी शताब्दी तक एशिया का सबसे बडा ज्ञान-केन्द्र, नालन्दा विश्वविद्यालय हाहाकार करता हुआ जल रहा है, लकडिया चनचना रही है, मास मज्जा की न जाने कसी गधाती बू फूट रही हैं, मटियामेट हो रहा है, धूलि-धूसरित! चिता जलती है तो उससे किसी एक निर्जीव शरीर की दाह

बाहर आती है, लेकिन यह ज्ञान-केन्द्र, जहा न जाने कितनी सहस्र पाण्डु लिपिया, हजारो हजार पुस्तकें, रत्नोदधि, रत्नसागर और रत्नरजक जैसे तीन-तीन विशाल पुस्तकालय, सप्तमजिली इमारतें और सैकडो चैत्य, विहार, मन्दिर, स्तूप, भवन अग्नि को समर्पित हो गए, स्वाहा ! यह सन् १३०३ ई० की बात है और लुटेरा है—बख्तियार खिलजी, जिसने न केवल नालन्दा को मटियामेट किया, वरन वहा के सैकडो पडितो, बौद्ध भिक्षुओ और विद्वानो को भी तलवार के घाट उतारा, कोई बच नही सका।

प्रसिद्ध चीनी यात्री युवान च्वाग ने, जो नालन्दा विश्वविद्यालय का छात्र भी था और जिसने पाच साल यहा बिताए थे, इसका समुचित वर्णन किया है—यहा के विश्वविद्यालय के सतमजिली इमारतो के शिखर बादलो से भी अधिक ऊचे थे और इन पर रोजाना प्रात काल हिम जम जाया करती थी। इनके झरोखो मे से सूर्य का सतरगा प्रकाश अन्दर आ कर वातावरण को सुन्दर एव दिव्य बनाता था। इन पुस्तकालयो म सहस्रो हस्तलिखित ग्रन्थ थे।

६३७ ई० मे जब पहली बार युवान च्वाग नालन्दा आया था तो उस समय यह विश्वविद्यालय अपन चरमोत्कष पर था। यहा मध्य एशिया, दक्षिण एशिया और बौद्ध देशो के सैकडो विद्यार्थी विद्याध्ययन हेतु आते थे। बडी कठिनाई से केवल उत्कृष्ट छात्रो को ही यहा प्रवेश मिलता था। शिक्षा की व्यवस्था यहा महास्थावर के नियन्त्रण मे थी और शीलभद्र उस समय वहा के प्रधानाचाय थे। विद्यार्थियो की सख्या दस हजार थी तथा अध्यापको की सख्या एक हजार।

वह भयानक आग

नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त वश के राजा कुमारगुप्त प्रथम ने पाचवी शती मे की और बाद मे इसे हप, नरसिह गुप्त, वेण्य गुप्त, विष्णुगुप्त, सववमन आदि राजाओ का सरक्षण भी प्राप्त हुआ।

नागार्जुन, आयदेव, वसुबन्धु, दिनाग धमपाल, धर्मकीर्ति, शीलभद्र जैसे महान आचार्यों ने भी नालन्दा का आचायत्व किया तथा अनेक विषयो

खण्डहरो मे भटकती आत्मा

'जहि मण पवन न सचरई,
रवि ससि नाहि पवेस।
तहि बढ चित विसाम करू,
सरहे कहिन उएस॥'

मेरे काना मे यह गुनगुनाहट सुनाई देती है। आसपास, बाएँ-दाएँ देखने लगता हू तो खण्डहर ही-खण्डहर। तब यह आवाज कहा से आ रही है, कौन है वह जो बोल रहा है, बतिया रहा है, उसासें ले रहा है, साहित्य और साधना का मणि काचन सम्बन्ध स्थापित कर रहा है।

यह आवाज है सिद्ध-सन्त सरहपाद की और सामने के खण्डहर हैं नालन्दा के। चौरासी सिद्धो मे छत्तीस सिद्ध इसी भूमि के आस-पास पैदा हुए और उन्होने सहज साधना की पद्धति मे अपने को कभी बज्रयानी तो कभी हीनयानी, तो कभी वाममार्गी सिद्ध किया, लेकिन साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दी के आदिकवि भी यही थे, यानी—सरह, सरहपाद।

जनसहार की पृष्ठभूमि

नजरें पीछे की ओर मुड जाती हैं। यह क्या? धुधुआती नही, चिंघाडती, आसमान को छूती लपटें उठ रही हैं—सातवी से लेकर बारहवी शताब्दी तक एशिया का सबसे बडा ज्ञान-केन्द्र, नालन्दा विश्वविद्यालय हाहाकार करता हुआ जल रहा है लकडिया चनचना रही है मास मज्जा की न जाने कसी गन्धाती बू फूट रही हैं, मटियामेट हो रहा है, धूलि

। चिता जलती है तो उससे किसी एक निर्जीव शरीर की दाह

बाहर आती है, लेकिन यह ज्ञान-केन्द्र, जहा न जाने कितनी सहस्र पाण्डुलिपिया, हजारो-हजार पुस्तकें, रत्नोदधि, रत्नसागर और रत्नरजक जैसे तीन-तीन विशाल पुस्तकालय, सप्तमजिली इमारतें और सैकडो चैत्य, विहार, मन्दिर, स्तूप, भवन अग्नि को समर्पित हो गए, स्वाहा ! यह सन् १३०३ ई० की बात है और लुटेरा है—बख्तियार खिलजी, जिसने न केवल नालन्दा को मटियामेट किया, वरन यहा के सैकडा पडितो, बौद्ध भिक्षुओ और विद्वानो को भी तलवार के घाट उतारा, कोई बच नही सका।

प्रसिद्ध चीनी यात्री युवान च्वाग ने, जो नालन्दा विश्वविद्यालय का छात्र भी था और जिसने पाच साल यहा बिताए थे, इसका समुचित वर्णन किया है—यहा के विश्वविद्यालय के सतमजिली इमारतो के शिखर बादलो स भी अधिक ऊचे थे और इन पर रोजाना प्रात काल हिम जम जाया करती थी। इनके झरोखो मे से सूर्य का सतरगा प्रकाश अन्दर आकर वातावरण को सुन्दर एव दिव्य बनाता था। इन पुस्तकालयो मे सहस्रा हस्तलिखित ग्रन्थ थे।

६३७ ई० मे जब पहली बार युवान च्वाग नालन्दा आया था तो उस समय यह विश्वविद्यालय अपने चरमोत्कर्ष पर था। यहा मध्य एशिया, दक्षिण एशिया और बौद्ध देशो के सैकडो विद्यार्थी विद्याध्ययन हेतु आते थे। बडी कठिनाई से केवल उत्कृष्ट छात्रो को ही यहा प्रवेश मिलता था। शिक्षा की व्यवस्था यहा महास्थावर के नियन्त्रण म थी और शीलभद्र उस समय वहा के प्रधानाचाय थे। विद्यार्थियो की सख्या दस हजार थी तथा अध्यापको की सख्या एक हजार।

वह भयानक आग

नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त वश के राजा कुमारगुप्त प्रथम ने पाचवी शती म की और बाद मे इसे हृष, नरसिंह गुप्त, वेण्य गुप्त, विष्णुगुप्त, सववमन आदि राजाओ का सरक्षण भी प्राप्त हुआ।

नागाजुन, आयदेव, वसुबन्धु, दिनाग, धमपाल, धर्मकीर्ति, शीलभद्र जैसे महान आचार्यो ने भी नालन्दा का आचायत्व किया तथा अनेक विषयो

के प्रकाण्ड विद्वानों का नेतृत्व इस विश्वविद्यालय को मिला, तभी यह कहा जाता है कि सभ्य संसार का यह प्रथम जगत प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। कहते हैं कि बख्तियार खिलजी ने जब आग लगाई तो यहां के समृद्ध पुस्तकालय से महीनों तक धुआं निकलता रहा। यह भी जनश्रुति है कि यहां के पंडितों, विद्वानों और भिक्षुओं ने यहां की दुर्लभ कृतियों को अपने सीने से चिपका लिया कि वे आग से बच जाएं और इस मृगमरीचिका में वे भी हस्तलिखित पोथियों के साथ ही क्षार हो गए।

नालन्दा केवल बौद्धों, जैनियों तथा सिद्धों के कारण ही सिद्धपीठ नहीं है, वरन सारिपुत और मोदग्लायन, जो भगवान बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में थे, की भी जन्मभूमि है। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य—पहाड़, वनखण्ड, तालाब, झील तथा हरियाली से परिपूर्ण क्षेत्र भी किसी को मोहित कर सकते हैं।

नालन्दा के खण्डहरों में आज भी जीवित आत्मा का वास है। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने इन्हें फूलों, पत्तों और हरी दूबों से सजाया है तथा रास्तों को भी मनोहर किया है। लेकिन आज भी वहां के खण्डित पड़े चैत्य, विहार, महाविहार, परकोटे, गर्भगृह, शीत-ताप नियन्त्रित छोटी छोटी ईंटों और मोटी मोटी दीवारों से मण्डित कमरे, अधजली लकड़ियां, छिन्न भिन्न मूर्तियां, मलबे, राख—सब अपनी कहानी कहते से प्रतीत होते हैं।

मलबे के नीचे पड़ा इतिहास गौरव गान होता है, लेकिन नालन्दा के खण्डहर कलंकपूर्ण टीका हैं, जिन्हें देखकर एक ओर जहां प्राचीन बौद्धिक इतिहास पर गर्व होता है वहीं दूसरी ओर किसी आततायी सम्राट की क्रूर हिंसा पर क्रोध भी उत्पन्न होता है।

पांचवीं शताब्दी के पहले भी नालन्दा का अस्तित्व बौद्ध और जैन-ग्रन्थों में आता है। कहा जाता है कि दूसरी शताब्दी में अशोक ने यहां प्रवास किया तथा अपनी शिक्षाएं दीं।

आइए एक बार जरूर नालन्दा

अब आप निश्चित रूप से नालन्दा के खण्डहरों के प्रति आकर्षित हुए

होगे! तो आइए एक बार नालन्दा, जो पटना से दक्षिण पश्चिम मात्र नब्बे किलोमीटर की दूरी पर है और जहा जाने के लिए पटना से बसो, टैक्सियो तथा रेल माग की अनुकूल व्यवस्था है।

नालन्दा से कुछ और दक्षिण नजर आते ही आपकी आखें पहाडियो के ऊपर मन्दिरो के कलश तथा गुम्बदो पर टिक जाएगी और ऐसा लगेगा मानो आपको कोई अपनी ओर बुला रहा है। बस, बढ जाइए उस ओर, मात्र पन्द्रह किलोमीटर की ही तो बात है।

यही है वह स्थल विशेष, जिसे किसी काल मे गिरिव्रजपुर, गिरिव्रज, कुशाग्रपुर तथा कुशागारपुर नाम से अभिहित किया गया, लेकिन आज यह राजगृह अथवा राजगीर के नाम से प्रसिद्ध है। महाभारत काल से लेकर बौद्ध जातक कथाओ, त्रिपिटको, जैन ग्रथो और हिन्दू शास्त्रो मे भी राजगृह का उल्लेख विभिन्न रूपो मे मिलता है।

जरासध का अखाडा इस बात का साक्षी है कि भगवान कृष्ण यहा आए थे और भीम तथा जरासध का मल्लयुद्ध हुआ था।

गौतमी धारा गौतम ऋषि के यहा वास करने और उनके आश्रम होने की याद दिलाता है।

बीसवें तीथकर मुनि सुव्रतनाथ के जन्मस्थल के साथ ही उनकी दीक्षा और कैवल्य ज्ञान की स्थली भी यही है।

बिम्बसार ने अपनी राजधानी के रूप मे इसे विकसित करने के अतिरिक्त भगवान बुद्ध को भी यहा आमन्त्रित कर रखा था, यह जातक सत्य है तथा वेणुवन आज भी उसका उदघोष करता है।

अन्तिम तीथकर भगवान महावीर ने यही के पवत पर चौदह वर्षा-काल जिसे चौमासा कहते है, बिताए थे।

ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान बुद्ध ने दूसरा तथा तीसरा चौमासा राजगृह मे ही बिताया था। देवदत्त ने यही तथागत के ऊपर गृद्धकूट पवत से शिलाखण्ड गिराकर मारने की योजना बनायी, लेकिन वह शिलाखण्ड बीच मे ही रुक गया।

बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद महात्मा महाकश्यप की अध्यक्षता मे मगध पति अजातशत्रु द्वारा निर्मित सप्तपर्णी गुफा के सामने प्रथम बौद्ध

सम्मेलन ५४४ में हुआ था, जिसमें ५०० परम प्रवीण बौद्धों ने भाग लिया।

जीवक की याद आज भी उस उद्यान से बनी हुई है, जिसे 'जीवक आम्र कुंज' कहते हैं।

मनियार मठ, स्वर्ण-भण्डार, रणभूमि, बिम्बसार का जेल, शंख लिपि आदि बार-बार इस बात की याद दिलाते हैं कि आज भी शोधकर्ताओं के लिए राजगृह एक दिशा-संकेत है।

भारतीय इतिहास की धरोहर

निश्चित रूप से राजगृह भारतीय इतिहास की एक धरोहर है, जहाँ आज भी किलों और परकोटों की अनेक निशानियाँ विशाल भव्यता के साथ सुरक्षित हैं।

राजगीर पाँच पहाड़ियों का संगम है, जिसे अनेक कालों में विभिन्न नामों से पुकारा गया। महाभारतकाल में पांडर, विपुल, वाराहक, चैत्यक और मातंग नाम से इसे अभिहित किया गया तथा बौद्धकाल में इसकी प्रसिद्धि पांडव, वपुल्ल, गिज्झकूट और इसिगिलि के रूप में रही।

वर्तमान समय में भी राजगृह की भव्यता पहाड़ी श्रृंखला, प्राकृतिक वैभव से भरपूर लताओं गुल्मों-पुष्पों वृक्षों और पहाड़ियों की शोभा किसी को भी मुग्ध करने के लिए काफी है। यहाँ जैन धर्मावलम्बियों तथा बौद्धों में विकास के लिए होड़ है। जैनियों ने 'वीरायतन' बनाकर एक नया परिवेश खड़ा किया, तो जापान के बौद्ध महासंघ ने फुजई गुरुजी के नेतृत्व में यहाँ गृद्धकूटपर्वत पर 'शान्ति स्तूप' की स्थापना कर और उसे रज्जुमार्ग द्वारा आवागमन में सहजता प्रदान कर—लोकप्रिय तथा आकर्षक बनाया। पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी, जो लगभग एक हजार फीट की ऊँचाई पर है, पर अवस्थित 'शांति स्तूप' गच्छामि, धम्म शरणं बीस पच्चीस किलोमीटर की दूरी से ही 'बुद्धं शरणं गच्छामि संघं शरणं गच्छामि' का जयघोष शुरू कर देता है।

इसी प्रकार जापानी बुद्ध संघ द्वारा नवनिर्मित वेणुवन में जापानी मन्दिर भी भगवान् बुद्ध का अत्याधुनिक अभिषेक है।

राजगीर के आकर्षण का सबसे बड़ा केन्द्र है—गरम पानी का झरना, जिसमे धार्मिक-बोध से अधिक स्वास्थ्य-लाभ का उल्लास भी निहित है। जाडो मे तो हजारो की सख्या मे गरम पानी के कुड मे स्नान हेतु लोगो का, जिनमे दूर-दूर के पर्यटको की सख्या ही अधिक होती है, वहा जमघट लगा रहता है। स्नान करने से चर्म रोगो तथा पीने से पाचन क्रिया हेतु इसका लाभ जग जाहिर है।

'बुद्धचर्या' मे एक प्रसग है—तब भगवान, जहा मगध राज्य श्रेणिक बिम्बसार का घर था वहा गए। जाकर भिक्षुसघ-सहित बिछे आसन पर बैठे। तब मगधराज बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघ को उत्तम खाद्य भोज्य ले अपने हाथ से सतृप्त कर, पूर्ण कर, भगवान के पात्र से हाथ खीच लेने पर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज के (चित्त मे) हुआ—'भगवान कौन सी जगह विहार करें, जो कि गाव से न बहुत दूर हो, न बहुत समीप हो, इच्छुको को पहुचने, आने जाने लायक हो, (जहा) दिन मे बहुत भीड न हो (और) रात मे शब्द घोष कम हो, लोगो के हल्ले गुल्ले से रहित हो, मनुष्यो के लिए रहस्य (एकान्त) स्थान हो, एकान्तवास के योग्य हो?' तब मगधराज को हुआ— यह हमारा वेलु (वेणु) उद्यान बस्ती से न बहुत दूर है, न बहुत समीप है। एकान्तवास के योग्य है, क्या न मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघ को प्रदान करू।'

तब मगधराज ने भगवान से निवेदन किया—'भन्ते, मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघ को देता हू।'

भगवान आराम(=आश्रम को) स्वीकार किये। और फिर मगधराज को धर्म सबधी कथाओ द्वारा समुत्तेजित कर आसन से उठकर चले गए।

भगवान ने इसी सम्बन्ध मे धर्म सम्बन्धी कथा कह, भिक्षुओ को सम्बोधित किया—'भिक्षुओ! आराम ग्रहण करने की अनुज्ञा देता हू।

बिहार मे इस समय पर्यटको का बड़ा आकर्षण केन्द्र राजगृह ही है जहा जैन, बौद्ध तथा हिन्दू—तीनो मतो के आधार-स्तम्भ बहुतायत के साथ हैं और उनसे भी परे यहा का प्राकृतिक सौन्दर्य विशाल परिवेश तथा स्वच्छ जल और वायु हर किसी को मोहित करते हैं। इस तरह के यहा सात कुड अथवा सोते हैं—गौतम धारा, ब्रह्मकुड, गगा जमुना,

शरद जोशी

सूरज-कुंड, मरकूम कुंड, सप्तधारा तथा तपोवन। ठहरने के लिए भी यहां सरकारी और गैर-सरकारी आवासगृहों की कमी नहीं है।

अंधेरे में लुप्त तथागत संदेश

गृद्धकूट पर्वत से कुछ ही दूरी पर ढलान में बने 'जयप्रकाश उद्यान' में अन्यमनस्क-सा टहलता हुआ मैं अपने-आप से एक सवाल पूछता हूं—जरा, मरण, दुख, ताप और तपस्या के बीच में अनवरत झूलते गौतम का मूलमंत्र करुणा में अभिप्सित हुआ, जिसकी गवाही यहां की चप्पा चप्पा भूमि दे रही है, लेकिन आज उस भूमि का सन्देश क्या है—जहां तथागत ने ज्ञान की प्राप्ति की तथा करुणा का उपदेश दिया ?'

मैं किसी बेताल के समान किसी डाली की तलाश करने लगता हूं, जहां लटक जाऊं, लेकिन निरुत्तर होकर, क्योंकि इन प्रश्नों के उत्तर न तो मेरे पास हैं और न किसी और सन्यासी के पास थे तो सम्भवतः मात्र बुद्ध के पास जिन्होंने कभी इसी भूमि पर बैठकर विश्वासपूर्वक कहा था— भिक्षुओ ! सभी जल रहा है। क्या जल रहा है ? चक्षु जल रहा है, रूप जल रहा है, चक्षु का विज्ञान जल रहा है, संस्पर्श जल रहा है, और जल रहा है चक्षु के संस्पर्श के कारण जो वेदनाएं—सुख दुख, न सुख न दुख—उत्पन्न होती है, वह भी जल रही है। राग-अग्नि से, द्वेष-अग्नि से, मोह-अग्नि से जल रही है। जन्म, जरा, और मरण के योग से, रोने पीटने से दुख से, दुर्मनता से, परेशानी से जल रही है—यह मैं कहता हूं।'

('बुद्धचर्या')

धरती कभी भी शापित नहीं होती, शापित होता है पुरुष और वह पुरुष और भी जो प्रकृति को धता बता दे। मैं नालन्दा के खण्डहरों तथा राजगृह के टूहों से बार बार बस एक ही प्रश्न करना चाहता हूं—पुरुष और प्रकृति की धमाचौकड़ी में तुम जीते या हारे ?

धरती पर स्वर्ग का एक टुकड़ा

स्वर्ग कहां है, स्वर्ग क्या है तथा इन्द्रपुरी या अलकापुरी की वास्तविक आधारशिला क्या है, हम नहीं जानते। लेकिन जब कभी कोई अद्भुत रमणीय, कमनीय और आंखों को चकाचौंध कर देने वाला दृश्य प्रकृति या पुरुष द्वारा इन्द्रवेष्ठित हमारे सामने आता है, तो बरबस हम कह पड़ते हैं—लगता है कि स्वर्ग का टुकड़ा है या फिर यह कि यह तो अलकापुरी है।

कोवलम पहुंचकर मुझे ऐसा ही भान हुआ और बरबस मेरे मुंह से यही निकला—आह, लगता है भगवान ने यहां सौन्दर्य अपने हाथों बिखेर दिया है।

उस सौन्दर्य को समेटते हुए मैंने वहीं लिखा—अरब सागर के तीर पर कोवलम में पिछले तीन दिनों से हूं। क्यों हूं, क्या हूं, किसलिए आया यहां, कुछ नहीं जानता, लेकिन हूं। और होना एक क्रिया है जिसे किसी प्रकार झुठलाया नहीं जा सकता।

सामने सागर की उत्ताल तरंगें किनारे से अठखेलियां कर रही हैं। बार-बार आती हैं, आकर लौट जाती हैं। क्यों आती [illegible] ? क्या लौट जाती हैं ? उनके मन में क्या है ? उनका व्यथा बोझ, उनकी अनकही कहानी, उनकी अतृप्त आकांक्षा क्या है ? ऐसे प्रश्न मैं पूछना चाहता हूं, जिनके कोई उत्तर हैं ही नहीं और अगर हों तो बौद्धिक हो सकते हैं, निश्चित उद्गार नहीं।

सागर महान है। अनन्त है। अगाध है। अबोध है। उसकी थाह नहीं। लेकिन सबके बावजूद वह मर्यादाशील है। वह जब अपनी मर्यादा तोड़ता है, तब प्रलय होता है। और प्रलय महाकालों में ही संभव है। यों

नहीं। और इसीलिए सागर मर्यादाशील है, विनयशील है, गरिमापूर्ण है, बोधगम्य है और उदार है।

जो डूबने जाते हैं उन्हें भी सहेजकर किनारे पर पहुंचा देता है। आती हैं लहरें झोंकों के समान और लौटती हैं मंदिर के घंटे की अनुगूंज की तरह। लहरों में घूमने का भाव, मिलन का भाव, प्यार करने का भाव, गले से लगा लेने का भाव, संवेदनशीलता का भाव, अनुराग का भाव, बोधों और व्याप्तियों का भाव अधिक है। लेने का कम और देने का अधिक।

बार बार मैं किनारों पर खड़े होकर सागर से बस एक ही सवाल पूछना चाहता हूं—समुद्र, क्यों तुम अपनी मर्यादा नहीं खोते ?

यह सवाल मैंने रामेश्वरम, पुरी, गोवा, पोरबन्दर, मद्रास, कोणार्क और गोपालपुर के तटों पर खड़े होकर पूछा है और आज यही सवाल मैं कोवलम के समुद्र तट पर खड़े होकर सागर से पूछता हूं और यही सवाल कल मैं कन्याकुमारी में भी पूछूंगा। सागर कोई जवाब नहीं देता है, हंसकर टाल देता है।

लेकिन मैं तो बार-बार बस यही एक सवाल पूछता रहूंगा और तब तक पूछता चला जाऊंगा जब तक इसका उत्तर नहीं मिल जाता।

बड़ी मनहर जगह है यह, जहां आया हूं। चारों ओर शांत स्निग्ध और महमह वातावरण। पहाड़ियों की रेख, नारियल के भुजा फैलाये पेड़, कूद कूदकर नहाती हुई विदेशी तरुणियां, बांहों में बांह डाले हनीमून पर आये कुछ भारतीय किशोर, नावों को सागर की लहरों पर तैराते मछुआरे, रेतीले बालुओं के परत-दर-परत स्कूली बच्चों की धमाचौकड़ी करती टोली, केरली बालाओं के सलज्ज चेहरे दूर से आता किसी मछुआरे के गाने का अबोध स्वर, मछली की लाह गंध और सूरज की हल्की फुलकी किरण। बड़ा अच्छा लग रहा है मुझे। लगता है क्या नहीं पहले मैं इस जगह आया था। खैर, भूलें जब होती हैं तभी तो हम प्रायश्चित करते हैं।

सागर की लहरों में झूमना मेरा मन अपने आप में कहीं जाकर खो जाता है। किसी का कुछ कहीं खो गया था और वह जिन्दगी भर उसकी तलाश करता फिरा, लेकिन वह मिला नहीं। कुछ वैसा ही है मन मेरा, जिसमें न जाने कितने ज्वार आते हैं जाते हैं। ऊर्मियां उठती हैं, गिरती

हैं। लपटें जलती हैं, बुझती हैं। चित्र बनते हैं, मिटते हैं। और यह क्या कोई मेरे मन की ही स्थिति थोड़े है। हर घर की कहानी एक ही हुआ करती है और हर किसी का मन बजारा फिरा करता है।

मैं बाधा की तलाश मे भटकता अपने को एक राहगीर मानता हू जो अनजान पथो पर चलकर मजिल की टोह लेता चलता है। और कही जो मजिल मिल गयी, तो सारी बातें खत्म, खोजना खत्म, शोध खत्म, जिज्ञासा खत्म, भटकना खत्म, तलाश खत्म, इसलिए मेरे ऐसे राही को मजिल कभी मिलती ही नही।

यह अभिशाप ही मेरा वरदान है।

वन पर्वत-सागर धूप छाव हवा-पानी-ये सब जीवित सत्य हैं और इस सत्य को जो पा जाये, वह अपने-आपको पा जाता है। हम भटकनो म पूरी जिन्दगी समाप्त कर देते हैं, लेकिन पाते कुछ नहीं। कारण, हम यह पता ही नही रहता कि हमारा अभीष्ट क्या है, हम क्या खोज रह हैं, हमे क्या पाना है तथा उसे पाने की राह क्या है ?

शून्य सत्य है और सत्य की व्याप्ति शून्य है। यह शास्त्रो का मत है, लेकिन हम आस्थाहीन होकर जीना चाहते है, नतीजा यह है कि पूरी सस्कृति ही शून्य हो रही है, लेकिन सत्य कही कुछ नही हो रहा है। इन बातो मे पड़ने से क्या लाभ। मैं समुद्र की बात करने आया हूँ, सौन्दर्य की बात करने आया हू। जीवन की बाध वत्ति ढूढने आया हू, आध्यात्मिक धरातल छूने नही!

लेकिन मन नही मानता है। केरल मे हू, समुद्र के किनारे हू, और तरगो म खो गया हू और ऐसे मे मुझे शकराचार्य याद आ रहे हैं। यही तो वह भूमि है, जहा आज से चौदह पन्द्रह सौ साल पूर्व शकर का आविर्भाव हुआ था, अद्वैत की सार्वभौमिकता और विशिष्टाद्वैत का शास्त्रीय मथन। और इसमे शक नही कि आचार्य ने जहा एक ओर शास्त्रो से, ग्रन्थो से, गुफाओ से, मदिरो से, भूमि से, गगन से बहुत कुछ ग्रहण किया होगा, वही सागर ने भी उन्हें कुछ कम नही दिया होगा।

और शकराचार्य मेरे मानस म छा जाते हैं। क्या कहा है उन्होने सागर के सबध मे लहरो के सबध मे, तरगो के सबध मे और ईश्वर के सबध

मे। कभी कभी जीवन की ऐसी स्थिति भी आती है कि एक छोटा शब्द, एक छोटी बात नही याद आये तो खाना हजम न हो। उठना-बैठना अच्छा न लगे, शरीर म तन्द्रा और सिर मे पीडा पैदा हो जाये। और यही स्थिति मेरी भी हो गयी है इस समय और मुझे महमा याद आता है, शकर न कहा था—

सत्यापि भेदापगमे नाथ, तवाहं न मामकीनस्त्वम ।
सामुद्रो हि तरग क्वचन समुद्रो न तारग ॥

हे नाथ, तुम्हारे और मेरे बीच जो भेद है उसके अवगत होने के बावजूद मैं तुम्हारा ही हू। तुम कभी मेरे न हो। क्याकि समुद्र और तरग एक होने पर भी समुद्र की ही तरगें कही जायेंगी। तरग कभी भी समुद्र का अपना अश कहने का दावा नही कर सकती।

आदमी कितना भी छोटा क्या न हो, वह अपने आपको शासक मानता है। तभी तो अगाध सागर के वक्ष पर अनगिनत नौकाए क्रीडा करती और तूफानी लहरा को धता बतलाती नजर आ रही है। याद आता है पुरी का समुद्रतट हजारा हजार नौकाए और कुछ उतनी ही समुद्रतट पर बनी भुग्गी झोपडिया। पूछने पर एक उडिया नाविक न कहा—ये सब केरल की नौकाए हैं और ये झोपडिया वहा वाला की ही हैं। हम सभी तो दो-चार मील से अधिक समुद्र क अदर नही जा पाते हैं, लेकिन व सभी बीस बीस तीस-तीस मील तक अदर चले जात है और कभी कभी तो हफ्तो बाद लौटत हैं।

साहस और दुस्साहस!

तभी तो तकषी शिवशकर पिल्ल न 'मछुआर' म लिखा है—"समुद्र मे तूफान उठा नाक म हू आये नाव के पास पहुचे, ह्वेल ने नाव का पूछ से मारा और जल की अतर्धारा ने नाव का भवर म खीच लिया। लेकिन आश्चर्यजनक रीति से वह मल्लाह सब सकटा से बचकर एक बडी मछली के साथ किनारे पर लौट आया।'

नावो को देखता हू, पाला को देखता हू क्षितिज को देखता हू तो बहुत सारी बातें मन म आती है और लोल लहरिया के समान एक-दूसरे से टकरा जाती हैं। हर लहर किनारा ढूढती है, लेकिन किसी ने नाविक का

सावधान करते हुए कहा था—

नाव न तो पाल गहे और न बीच पार बहे
पाल धीरे से उठाओ, कोई लहर रुठे ना।
धीरे धीरे स्वर उठाओ कोई तार टूटे ना।

लेकिन 'निराला' ने अज्ञात यात्री को एक दूसरी ही चेतावनी दी थी—

'बाधो न नाव इस ठाव बधु ।
पूछेगा सारा गाव, बधु ।'

और इससे भी आगे बढकर किसी कवि ने हुकार दी है—

जब नाव जल म छोड दी
तूफान म ही मोड दी
दे दी चुनौती सिन्धु को
फिर पार क्या ? मझधार क्या ?

सागर अनन्त है, अथाह है, इसीलिए इसके तीर पर खड़े हो जाओ तो न जाने कितनी उत्सुकताए एक साथ मन म हिलोरें लेने लगती हैं। जीव जगत जीवन मिथ्या ससार-ब्रह्म-सत्य ब्रह्मचर्य नान मर्यादाशील और न जाने कितने ऐसे प्रश्न कौंध जाते है, जिनम मर ऐसा यायावर नही टिक सकता, यह तो उन्हे ही अभीष्ट हो, जो इसमे हैं।

हम तो ससारी हैं। आज यहा हैं, कल वहा रहेंगे। अभी यह सोच रहे हैं, दूसरे ही क्षण किसी अन्य विचार मे डूब जायेंगे। हमे कहा इतनी फुरसत कि हम तत्त्वो म डूब सक।

लेकिन फिर रह-रहकर बस एक ही सवाल—समुद्र, तुम क्यो नही अपनी मर्यादा को त्याग देते ?

सूरज डूब रहा है। रक्त से सना आकाश का वह भाग मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। लोग आखें फाड फाडकर उसे देख रहे हैं। और मैं परेशान हू डूबते सूरज की दद भरी लाली, किसी क्वारी कन्या की अप्रत्यक्ष कल्पना—मुझे बेचैन बना देती है।

यह सूरज कहा डूब रहा है ? मैं जानना चाहता हू। अरब सागर म या हिन्द महासागर मे या बगाल की खाडी में ?

आइये, एक बार देखिये छोटा नागपुर

जिस मिट्टी में कश्मीर के केसर की सुगंध, केरल के नारियल वृक्षों की शोभा, अरुणाचल के कदली वनों की हरीतिमा, गोवा के समुद्रतटों की मनभावन हवा, अण्डमान निकोबार के द्वीपों की मनोहारिता, हिमालय की उपत्यकाओं की विशालता, हिमाचल के चप्पे-चप्पे में फैले विहसत सौंदर्य का छिड़काव हो—उसी धरती को बिहार का जो हिस्सा सबसे अधिक आलावित करता है, उसका ही नाम है छोटा नागपुर। रांची, हजारीबाग, गिरिडीह, गुमला, लोहरदगा, सिंहभूम, धनबाद और डालटेनगंज—ये आठ जिले आपस में मिलकर छोटा नागपुर की रचना करते हैं।

छोटा नागपुर के चप्पा चप्पा धरती पर सुषमा और समृद्धि, दोनों का युग्म बोध आपको देखने को मिलेगा। बिहारी की कंचन लतिका जैसी नायिका ने जब भूषणों से अपने शरीर को ढाप लिया था तो उसकी स्थिति विचित्र हो गयी थी—

'भूषण भार सभालि है कैसे तन सुकुमार।
सूधो पाव न धरि सकै, शोभा ही के भार॥'

छोटा नागपुर की दशा भी हू-ब-हू बिहारी की उस नायिका के समान ही है। ऋद्धि और सिद्धि का अनोखा योग पुरुष और प्रकृति की अदभुत युग्मता देश के शायद ही किसी भू भाग में इस भांति दिखाई दे जैसा छोटा नागपुर में। वन-बाग, लता-गुल्म, झील झरने, कल-कारखाने, बांध बिजली, खान-खनिज सबका मनोहारी रूप एक साथ यहीं देखने को मिलता है। अगर यहां की भूमि के ऊपर सोना छिटकता है, तो भूमि के

नीचे हीरा दमकता है। अगर यहा की झीलो और झरनो मे मादकता भरने की शक्ति है, तो यहा के बाधा मे प्रकाश बिखेरने की क्षमता। एक ओर जहा हजारो यात्री हुडु, हिरनी और जोन्हा जलप्रपातो को देखकर अपनी आत्मिक प्यास बुझाते है, वही दूसरी ओर लाखो व्यक्तियो को डी० वी० सी०के कोनार, तिलैया, बोकारो आदि पॉवर स्टेशनो से लाभ पहुचता है और केवल बिहार का ही आधा भू-भाग उसकी रोशनी से प्रकाशवान नही होता, वरन् बगाल का आधे से अधिक भाग भी उससे लाभान्वित होता है।

पुरुष और प्रकृति की धमा चौकडी मे पुरुष की पराजय तथा विज्ञान की जय यहा भी देखने योग्य है। जिस दामोदर की विनाशकारी लहर मे प्रतिवर्ष हजारो-हजार प्राणी तबाह और बर्बाद हो जाते थे उसी दामोदर का नियन्त्रण आज हजारो घरो की खुशी का एकमात्र कारण है। लाखो किलोवाट बिजली तैयार करना मात्र उन बाधो का काम नही है, वरन् हजारो यात्री कोनार, थरमल, तिलैया और बोकारो की शोभा देखने प्रतिवर्ष आते हैं और तिलैया पहाडी पर स्थित डी० वी० सी० का बगला तो सैलानियो का अड्डा है।

उत्तर प्रदेश वाले रानीखेत को पहाडियो की रानी कहते है और कश्मीर जाने वाला हर यात्री गुलमर्ग को वहा की महारानी मानता है, परन्तु छोटा नागपुर रानी नही, राजा है—और वह राजा है सुषमा और सौरभ से लदा नेतरहाट, जिसकी उषाकालीन और सन्ध्याकालीन शोभा एक ओर दार्जिलिंग से टक्कर लेती है, तो दूसरी ओर वहा की प्रकृति अल्मोडा की धरती को भी पीछे छोड जाती है।

छोटा नागपुर का वास्तविक वैभव एक स्थान पर नही मिलेगा वरन इसके आठ जिलो—राची, हजारीबाग, धनबाद, पलामू, सिंहभूम, गुमला, लोहरदगा तथा गिरिडीह मे वह बटा हुआ है। पजाब के समान छोटा नागपुर मे पाच प्रसिद्ध नदिया प्रवाहित नही होती—मगर ऐसी नदिया भी हैं जो सोना बिखेरती हैं, जैसे—स्वर्ण रेखा और ऐसी नदिया भी हैं जिनका पाट सौन्दर्य की खान कहा जा सकता है जैसे—कोयला।

समृद्धि तो छोटा नागपुर की चप्पा चप्पा भूमि मे बिखरी पडी है।

केवल खनिज पदार्थों में देखें तो यहा एंटीमोनी, एस्बेस्टस, बराइटिस, बाक्साइट, कोयला, चीनी मिट्टी, लोहा और मैंगनीज, ताबा तथा अबरक पाया जाता है। छोटा नागपुर के जगलो मे तथा पहाडियो की उपत्यकाओ मे धरती के गर्भ मे—कितना रत्नकोष दबा पडा है इसका मूल्य कहा ही नही जा सकता।

धरती के अन्दर का सब्जबाग दिखलाना ही मेरा काम नही, बल्कि यहा तो धरती के ऊपर का कोष भी देश मे अन्यतम है। कोडरमा और गिरिडीह मे अबरक के कारखाने, जमशेदपुर तथा बोकारो मे लोहे का कारखाना और राची स्थित भारी मशीनो का कारखाना, आज जगत-प्रसिद्ध है।

यह भी सच्चाई है कि छोटा नागपुर की प्राकृतिक छटा के ऊपर औद्योगिक विकास घर करता जा रहा है या घर कर बैठा है। इसे हम एक ओर वरदान कह सकते हैं, तो दूसरी ओर अभिशाप। सादगी और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति यहा के आदिवासी भी बाहरी सभ्यता की रगिनी मे रगे जा रहे हैं। हडिया पीकर मस्त रहने वाले आदिवासी अब स्कॉच और ह्विस्की का स्वप्न भी देख लेते हैं तथा जूडे मे फूल खासकर प्रकृति से सान्निध्य ग्रहण करने वाली छोटा नागपुरी बालाए अब क्लिप तथा प्लास्टिक का फूल भी जूडे मे लगाने लगी हैं।

छोटा नागपुर की भूमि प्रदेश में ही नही वरन देश की अप्रतिम भूमि है। झीलो की कल्लोल भरी मुसकराहटें झरनो के मुखकारी गान, आदिवासियो का स्वच्छ नि स्वार्थ नृत्यगान तथा दूसरी ओर कल-कारखानो की गडगडाहट, कोयला और अबरक के खानो मे परिश्रमरत युवक-युवतिया का स्वेद-बूद—सब मिलकर छोटा नागपुर की सुषमा का सदेश देते हैं और समृद्धि का गान गाते हैं।

इस सबके बावजूद इतना तो कहना ही पडेगा कि जहा इस भू भाग म कभी सलानियो का अड्डा रहता था और बिहार को नाज था और ग्रीष्म की राजधानी के रूप मे राची की प्रसिद्धि थी, वहीं यहा का वातावरण आज बिलकुल बदल गया है। कल कारखाने इच इच पर खुल रहे हैं खुल गये हैं और आगे भी खुलेंगे लेकिन यहा के वासियो मे उससे शायद

दस प्रतिशत का भी लाभ नहीं मिला है, बदले में उनकी सभ्यता, संस्कृति, रहन सहन, पर्व-त्योहार, जीवन जागरण, सादगी, भलमनसाहत पर विचित्र आक्रमण हुआ है। सभ्यता के साथ-साथ शायद असभ्यता भी बढ़ती जाती है। इसीलिए अब यह छोटा नागपुर बिलकुल नहीं रहा, जो आज के बीस-तीस चालीस साल पहले था। बदले में नागरिक सभ्यता-संस्कार का बनावटी मुखौटा हर कहीं उसे जबरदस्त किए हुए है।

फिर भी इतना सही है कि बिहार की आत्मा है छोटा नागपुर। धन वैभव में ही नहीं, सुषमा प्राकृतिक छटा में भी और वन वासियों की निरीहता में भी।

हम बिहार के इस हृदय खंड को अपनी श्रद्धा, प्रेम और अनुभूति से सींचे तो संभव है कि इस भू खंड की कुछ अनौपचारिक रक्षा कर सकें जो मानवीय संवेदना का ही एक अंग होगा।

आज देश के सामने राष्ट्रीय एकता का प्रश्न सर्वोपरि है। छोटा नागपुर में भी अलगावकारी लहर यदा कदा मुखरित होती है। झारखण्ड की मांग, कोल्हुआ-खंड की मांग अथवा छोटा नागपुर को शेष प्रांत से अलग करने की भी मांग उठती है। निश्चित रूप से इस भावना के पीछे उन निरीह आदिवासियों की भावनाएं भी संनिहित है जिनका कहना है कि बाहर वाले जिन्हें यहां की भाषा में दिक्कू कहा जाता है, यहां के मूल निवासियों का शोषण कर रहे हैं। इसमें सचाई भी है। जो भी यहां बड़े बड़े कल कारखाने, उद्योग धंधे खुलते हैं उनका लाभ बाहर वालों को ही अधिक मिलता है यहां के धरती-पुत्रों को कम। यहां के आदिवासियों के तन पर अब तक न तो भरपूर वस्त्र है और न मन में संताप।

जिस धरती पर प्रकृति की ऐसी महती कृपा हो, उसमें असंतोष के बीज वृक्ष का रूप ग्रहण करे उसके पहले ही इसका समुचित समाधान ढूंढ निकालना होगा।

घूमते पहियो पर

पटना मे दिल्ली की राह अलीगढ के पास हू। तिलहन और दलहन के पौधे ठाठे मार रहे हैं। सरसो न पीले मुकुट धारण कर लिए हैं। चना न अभी गदराना शुरू किया है। मटर की छिमिया बाना म हल्की गुलाबी कगना डाले इतरा रही हैं। गेहू के मौर मानो गुलाब को सच मे धता बता कर रहेंगे। तीसी जिसे अलसी भी कहते हैं, अधखुली आखा देख रही है। जो ने अपने को खेतो का चौकीदार साबित कर रखा है तो अरहर माना तलाड मार कर अपनी गुडई साबित करने को तुला हुआ है—अरे छोटे छोटे सुकुमार छौना, तुम सब कोमल लता-लवग हो पछेआ म पश्चिम और पूरवा मे पूरब। यदि सहारे की जरूरत हुई तो हमारे पास आ जाना।

खेतो के बीचोबीच आमो के सुरक्ष पेड मजरियो से लदे-सवरे यह द्योतित कर रहे हैं कि हम कोई रजस्वला बैगनबेलिया नही हैं और न तो कुआरे से अशोक के फूल—हम तो दूधो नहाओ, पूतों फलो धनुप पर सधे बाण हैं। देखना कुछ दिनो मे हमारी शोभा। याद करोगे कि कोई सद्य दुहिता कन्या गोद मे शिशु लिए उसे स्तनपान करा रही है।

भागती गाडी से खुर्जा, हाथरस, फिरोजाबाद, टुडला, हिरनगाव—सब-के-सब हाथी के झूल नजर आते हैं—बस या ही झूलने के लिए हाथी की पीठ पर महावत ने डाल रखे हैं। लेकिन ये गाव, ये घर, ये देहात—सबके सब आज भी खजन नयन के समान मन भावन टुक-टुकऔर रसभीने नजर आते हैं। 'आम के टिकोले या 'महुए के फूल'।

मगध एक्सप्रेस भागी चली जा रही है। डिब्बे मे बठा मैं बाहर की दुनिया को अपने अन्दर भर लेना चाहता हू। यह गाडी अलीगढ मे नही

रुकती है, अत उसके पार होते ही मैं पुन अपनी आवलोकन क्रिया तेज कर देता हू।

जहा कही फसल नही है और धरती बजर है वहा कैसी उदासी नजर आती है, मानो सूनी गोद। मानो आहो से भरे होठ। मानो उदासी से आबद्ध आखे। मानो एक नम्बर से छूटी हुई लॉटरी। मानो स्कूल से मास्टर की लताड खाकर भागा हुआ लडका। मानो आसुओ के अभाव मे फटी-बुझी आखें।

ऐसा लगता है मानो जैसे किसी बहू के लिए झुमका, करधनी, पहुची, नथिया, टिकुली, मगटीका, बिछिया आदि जरूरी हैं, वसे ही किसी खेत का सौभाग्यचिह्न भी हरी फसले हैं।

मैं इन रास्तो से दो चार हजार बार गुजरा होऊगा। विगत बीस वर्षों मे दस-पन्द्रह बार सडक माग से, अन्यथा बराबर रेल द्वारा और हर बार खुली आखो मैं भारत की आत्मा को टटोलने का प्रयास करता रहा हू।

अब जसे सामने एक गाव आ गया। क्षणो के अन्दर आखो के सामने के हर दृश्य को पी लिया। एक अधेड स्त्री बीच मे बैठी है, चार-पाच स्त्रिया उसके बालो से जू निकाल रही हैं। कितना बडा शोधकाय है!

एक चिकनाई से भरपूर सावली-सलोनी कन्या उपले पाथ रही है। मानो जीवन का अभिषेक उसने थाम लिया है।

एक दस बारह वष का लडका गाडी की ओर ही मुह किए खडा होकर अपने हाथ से इन्द्री पकडे पेशाब कर रहा है, मानो अपनी वीरता और निर्भयता दिखाना चाहता हो।

तीन चार किसान अपने हाथो म लाठी गोजी लिए किसी गभीर समस्या मे मशगूल हैं, मानो उन्होंने अणु आक्रमण की कोई भनक सुन ली हो। गायें, बैल, भैंसें चर रहे है। बहुत गौर से मैंने देखा है अरहर के खेतो से दो युवा नर-मादा उठकर दो दिशाओ मे प्रस्थान कर रहे हैं, मानो उन्होंने पृथ्वी को कुछ क्षणो के लिए स्वग बना लिया हो।

गाडी की आवाज सुनकर नित्य क्रिया मे तल्लीन एक अधेड उम्र की स्त्री सहसा उठ खडी हुई है, मानो यात्रिया ने इस रूप मे उसे देख लिया तो उसकी जान लाज से चली जायेगी।

यही चित्र है किसी भारत के गाव का, जिसे भागती गाडी की खुली खिडकी से हम पकड सकते हैं।

लेकिन इससे परे भी एक सपूण दुनिया ट्रेन के डिब्बा मे भी सिमटी होती है। हर तरह के साबित दस्तूर दश्य और बातें देखी सुनी जा सकती हैं।

भारतीय रेल वास्तव मे भारतीय जन जीवन की तसवीर लिए चलती हैं। पावस हो, शरद हो ग्रीष्म हो हेमत हो या वसत—ये सदाबहार पटरियो पर भारत की आत्मा का बोझ लिए अबाधगति से आगे-पीछे होते रहते हैं। हमने मात्र यात्री से यदि अपने आपको सुधि यायावर बना लिया तो ट्रेन के डिब्बे मे बैठकर भी अन्दर और बाहर जो देखेंगे वही वास्तविक भारत है।

बिखरा, बधा और फला राष्ट्र—राजनीतिक, सामाजिक और सास्कृतिक रूप से किस तरह एक है, इसका भी नजारा किसी रेल के डिब्बे ही मे सचाई के साथ हो सकता है। क्योकि आज भारतीय रेलवे ही सही अर्थों मे राष्ट्रीय एकता का प्रतिबिम्ब है।

रेल के डिब्बे का हर यात्री उन वीरान सपनो का साक्षी होता है, जिसे देखना भी अयाचित सुख है। मैं बाहर की दुनिया से अन्दर सिमट आता हू।

चाय-काफी मूगफली पान सिगरेट पावभाजी बिस्कुट आदि वाले अब प्लेटफाम छोडकर डिब्बो मे भी छा गए हैं। सामने की बच पर बैठे मौलवी साहब कुछ देर पहले नमाज पढकर निवत्त हुए है, तभी काफी की आवाज कानो मे आती है तो फौरन पुकारते हैं—अरे बच्चे इधर आना।

और सबसे पहले कॉफी का प्याला वे मेरे साथ चल रहे त्रिपाठी जी की ओर बढाते हैं—लीजिये पडित जी, शुरू कीजिये। आप ही लोगो के शास्त्रो म लिखा है—अगरे अगरे विपरा नाम

डिब्ब म हसी छूटती है ोर त्रिपाठी जी बकिफक हाथो म कप थाम लेते हैं जस काई जाम थामे। पहले का जमाना होता तो वे पाच बार सोचते, चार बार इधर उधर झाकते, दो बार हाथ बढाकर पीछे कर लेते। लेकिन नही अब जमाना बदल चुका है और रेल के डिब्बे को धन्यवाद है

कि उसने अनजाने ही बिखरे भारत को एक पहचान दी है, मिलाया है तथा भेदभावों की दुष्प्रवृत्तियों को फेंकने में मदद की है।

आज डिब्बे में बैठे सारे के सारे लोग न किसी की जाति पूछते हैं और न वर्ण-धर्म। यात्रा घंटे दो घंटे की हो या दो-चार दिनों की, आसपास बैठे यात्रियों को एक बना देती है।

और तब सहसा हमें यह भान होता है कि हमारा राष्ट्र एक है, हम एक हैं तथा हर दिल की धड़कन का प्रवाह गंगा और यमुना की धारा है जिसके किनारे कोई अजनबी नहीं होता।

जिन्दगी राह भी, राही भी, सफर भी लेकिन

लिखने बैठा तो जो पहली पंक्ति कहीं से करबद्ध प्रार्थना के समान सामने आकर खड़ी हो गयी, वह है—

'जिन्दगी राह भी, राही भी, सफर भी लेकिन
जिनको चलना नहीं आता वे कुचल जाते हैं।

अपनी जिन्दगी को भी यायावरी का ही एक हिस्सा मानता आया हू। यही कारण है जो 'अरे यायावर रहेगा याद' शीर्षक मुझे अपनी ओर बुलाता रहता है और यह भी सही है कि उस यायावर-लेखक ने मुझे जब याद किया तो हर काम छोडकर मैं भागा हुआ आ पहुचा।

लेकिन यह 'यायावरी' सबसे पृथक है। मानकर चलता हू कि जीवन का हर क्षण साहित्य की बहती धारा है चाहो तो स्नान कर लो, पानी के छींटे अपने मुह मस्तक पर डाल लो और यदि बिलकुल अनभिज्ञता ही है तो फिर डूब जाओ। जिनको चलना नहीं आता वे, कुचल जाते हैं।

पता नहीं कब तक आपको मेरे साथ चलना पडे। आइये खुले दिल से, यादों की बारात को कहीं ताक पर रख दीजिए तथा स्मृतियों के सन्त्रास को किसी खूटी पर टाग दीजिये।

नींद खुली तो पाया कि यह मथुरा है, लेकिन न तो कहीं गायें दिखाई दीं, न गोप, न गोपिया, न मटका, न दूध, न दही, न यशोदा न राधा। सबसे पहले जो चीज़ नजर आयी वह गावों के किनारे माताए बहू-बेटिया भागती गाडी को धता बताती हुई और लाज को ताक पर रखकर नित्य-क्रिया में बेखबर लीन।

मुझे सहसा जवाहरलालजी याद आ गये। आजादी के दो-तीन वर्षों के अन्दर ही वे पश्चिमी या पूर्वी जमनी गये तो वहा के बुद्धिजीवियो और पत्रकारो ने उनसे एक सवाल किया—'आप कब मानेंगे कि आपका देश पूण रूप से विकसित हो गया ?'

जवाहरलालजी ने क्षण मात्र का समय भी सोचने मे नही बर्बाद किया और बोले—'हमारे देश के जब सभी नागरिक शौच के लिए शौचालयो का प्रयोग करने लगेंगे तब मैं समझूगा कि हमारा देश पूण रूप से विकसित हो गया।'

'इसका क्या अथ हुआ ?' किसी सयाने पत्रकार ने प्रश्न को बिखेरा।

'इसका अथ यह हुआ कि हमारा देश अभी गरीब भी है और अशिक्षित भी। गुलामी की बेडी हमने जरूर तोड दी, लेकिन विकास के लिए अनेक मजिलें हमे तय करनी हैं। हमारे देश के गरीब और अशिक्षित नागरिक अपने नित्य कर्मों के लिए खुले मदानो मे जाते हैं, जिसकी कल्पना आप जैसे देश के नागरिक नही कर सकते। जब हमारे देश के हर नागरिक को वह मुहय्या हो जायेगा या वह शौचालयो का प्रयोग करने लगेगा, तब उसी समय यह साबित हो सकेगा कि अब हर नागरिक शिक्षित भी हो गया और समद्ध भी।' प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने यह व्यावहारिक बात बिना किसी भूमिका के विदेश की उस धरती पर कही।

आजादी के सैंतीस वर्षों बाद भी स्थिति शायद वही की-वही है। सुबह या शाम अथवा कुछ देर रात गये किसी कस्बे या देहात के किनारे से आप निकलें तो सडको के किनारे का अजीब दश्य आपको विचलित कर देगा। ऐसे मे कितना भी सतुलित व्यक्ति क्यो न हो, उसे मितली आ जायेगी। रोज ही आपको ये नजारे देखने मे आते होंगे। क्या कोई इस छोटी-सी चीज, जो शायद भारत जैसे ग्रामीण देश के लिए सबसे महत्व की है, उस पर कभी नही सोचता ? हमारे गावो की अधिकाश महिलाए दिन भर कसमसाती हुई शाम या रात होने की बाट जोहती हैं, जिससे उनकी लाज का कुछ हिस्सा बच जाये और सूरज उगने के पहले ही उमस निपट जाना चाहती हैं कि कोई देखे नही और किसी ने देख लिया तो प्रयास करती हैं

कि जिस रूप मे भी हो, उठ खडी हो जायें।

मैं इस सोच को कुछ देर के लिए परे ढकेल देता हू, क्योंकि सामने आ गया है अब विशाल पीपो का महानगर, धुआ उगलती बडी-बडी चिमनिया—तेल शोधक कारखाना, मथुरा। काश, इस एक उपक्रम का पूरा पैसा गावो मे सुलभ शौचालय के लिए लगा दिया गया होता तो कम-से कम एक जिले की लाज बच सकती थी।

लोग-बाग डिब्बे म उठने लगे हैं। जम्हाइया ले रहे हैं। महिलाए हल्के से अपने कपडों की सिलवट ठीक कर रही है। एक दो चाय कॉफी वाले अपने बाजार का मुआयना कर रहे हैं और मेरे सामने की दवी जी उठने के साथ ही अपने वनिटी बग मे शीशा और लिपस्टिक निकालकर तरोताजा होने का प्रयास कर रही है।

मैं सेवाग्राम और पवनार आश्रमा की झाकी लेकर दिल्ली वापस जा रहा हू और अब सोच रहा हू कि वहा पहुचकर वही कृत्रिम भारत देखने को मिलेगा—एशियाड और नाम की वाह वाही मे खोयी भारत की राजधानी, जो वास्तविक भारत स कोसो दूर है। कही जो असली भारतवासी इस महानगर म आ जाये तो वह बार-बार यही अनुभव करता कि किसी विदेशी शहर मे पहुच गया हू, यह मेरा देश तो है ही नही!

देश की अथ-व्यवस्था गावो और शहरा दोनो पर खडी है लेकिन हमारी श्रम शक्ति और अन्न शक्ति तो एकमात्र गावो पर ही निभर है। जब गावो की बात सामने आयी है तो मुझे अनायास स्मरण हो आया है अभी कुछ दिनो पहले नागपुर के पास कलमेश्वर नामक स्थान मे आयोजित उस गोष्ठी की बात जिसम भारत के किसाना और मजदूरो की बातो पर तीन दिना की बहस हुई तथा भूमिहीन श्रमिको की दशा सुधारने पर बल दिया गया। बार-बार वहा उपस्थित देश के कोने-कोने से आये लगभग दो सौ प्रतिनिधियो ने इस बात पर बल दिया कि पूरी की पूरी एक योजना इनके ऊपर ही बनायी जाये।

मानना पडता है कि महाराष्ट्र और गुजरात की भूमि मे अभी भी सोंधी महक है, जहा से ग्राम चेतना की बास प्राय उठती रही है, जो मात्र रस्म-अदायगी या खानगी नही है। कलमेश्वर मे ही उपस्थित सर्वश्री श्रीधर

वासुदेव धावे, सुदाम देशमुख, बापू साहेब तोमर, सर्वेश पटेल, रामजी शर्मा, मोहम्मद शकूर मुरलीधर दोईफोडे, दत्ताजी मेघे, दादा साहेब मडावी आदि लोगो ने इन समस्याओ पर खुली चर्चाए की, जिनमे उनके अनुभवो का स्पर्श था।

नागपुर और महाराष्ट्र की बात जब सामने आ गयी है, तो एक बात की चर्चा किए बिना मन नही मान रहा है। जिस दिन मैं नागपुर म था उसी दिन विदर्भ हायर सेकडरी बोर्ड का परीक्षाफल अखबारो मे आया और मुझे यह देखकर बेहद खुशी हुई कि इस भूमि के लोग अपने बच्चो की कीमत समझते हैं और उन्हे गौरव देना जानते हैं। तभी तो नागपुर से निकलने वाले सात दैनिक पत्र, जिनमे दो अग्रेजी, दो मराठी और तीन हिन्दी के थे, सबो मे बैनर हैडिंग के साथ उन उच्चो के नाम चित्रो के साथ आये जिन्होने इस बार की परीक्षा मे प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किए थे—ठीक वैसी ही हैड लाइन जिस प्रकार कि कुछ दिनो पहले एवरेस्ट विजेता की आयी थी। इसके साथ ही सभी पत्रो ने उन बच्चो को सपादकीय लिखकर अभिनन्दित किया था। मुझे यह सब बहुत प्यारा लगा और लगा कि इसीलिए जहा दस पूरा मिलाकर भी राष्ट्र ही है, वहा एक प्रान्त होकर भी यह महाराष्ट्र कहलाता है।

बहुत दिनो के बाद पजाब और आसाम से हैड-लाइन इन सुर्खियो पर आकर रुकी थी, जो नेत्रो को शीतल लग रही थी।

चारो ओर कपास के खेत, सतरे के बाग और लघु उद्योगो के जाल नजर आ रहे हैं और लग रहा है माना इस मिट्टी के साथ कर्मठता के बीजो और गाधी तथा विनोबा क सदविचारा का सगम हो गया है।

विचार-खडो मे तरणी आती है। गाडी अब दिल्ली के करीब पहुच गयी है—पलवल, बल्लभगढ पार कर फरीदाबाद म हम प्रवेश कर रहे हैं और अब कुछ ही देर मे दिल्ली पहुचने वाले है। सामानो के बाधने-साधने और सरिआने का सिलसिला शुरू हो जाता है। जिनके पास सामानो की लम्बी कतारें हैं वे बार-बार गिनती कर रहे हैं। वे ज्यादा सुखी हैं, जिनके पास एक अदद शरीर और एक अदद सामान है।

अर्जुन और शशिधर दोना की राय होती है कि निजामुद्दीन मे ही

उतरा जाये, अत बात मान लेता हू और स्वय सामान लादे बाहर आता हू।

'तुसी किथे जाणा है जी?' बात की शुरुआत एक झटके के साथ होती है। जब तक मैं उनका जवाब दू तब तक सरदारजी मेरी बाहें खींचते हैं—'अरे लालाजी, चुपचाप इधर आकर मेरे स्कूटर पर बैठ जाओ।'

'जाओगे कहा यह तो बोला!' बीडी फूकते हुए और उसके धुए से मुझे झुलसाते हुए एक तीसरे स्कूटर वाले भाई हमारे ऊपर बाज गति से प्रहार करते हैं।

'लोदी रोड।' मैं धीरे से बोलता हू।

'तो दे देना दस का एक नोट!' यह चौथे सज्जन हैं।

बडी मुश्किल से जान छुडाकर एक स्कूटर पर सवार होकर गतव्य की ओर रवाना होता हू। स्कूटरवाला मथुरा रोड से सुन्दरनगर की ओर बढ जाता है। मैं जब कहता हू कि इधर कहा, लोदी रोड तो इस ओर है, तो वह आखें तरेरकर मेरी ओर देखता है—'लालाजी, मैं इस शहर मे पिछले बीस साल से स्कूटर चला रहा हू। तुम तो अभी दिल्ली म पैदा ही हुए हो। जैसे ले चलता हू वैसे चलना है तो चलो और नही तो उतरो, अपना रास्ता लो। निकालो पैसे!' वह स्कूटर रोक देता है और इधर मेरी सास रुक जाती है। याद करने पर भी मैं नही समझ पाता कि मैंने कोई बेजा बात कही हो। लेकिन मेरा अपना विगत बीस पचीस वर्षों का तजुर्बा है कि दिल्ली शहर की सभ्यता तमीज, सस्कार और सवेदनशीलता कहा हवा हो गयी है। हर जगह की कोई न कोई सस्कृति होती है, सस्कार होता है मिठास होती है पारिवारिक सवेदना होती है जिसकी जगह दिल्ली म कठोरता, हृदयहीनता उजड्डपन, लाल आखे, गन्दी गलौज भरी भाषा, फूहड शब्द इनका ही सामना किसी भी यात्री को स्टेशन के कुली से लेकर टैक्सी, स्कूटर, आटो, तागा हर किसी की जबान से आपको झलक जायगा।

मैंने अपने जीवन मे अनेक अवसर दिल्ली मे ऐसे देखे हैं जब यात्री हसरतभरी नजर से यहा आया और लुटकर या पिटकर चला गया।

दिल्लगी की बात नही है, बात गभीरता से सोचने की है कि दिल्ली क

पास दिल भी है या नहीं ?

मैं सवेरे-सवेरे उलझना नहीं चाहता, क्योंकि इसके लिए तो एक ही रास्ता था कि जैसे स्कूटर वाला अपनी भौंहें टेढ़ी कर रहा था, वैसे ही मैं भी अपनी बाहें चढ़ा लूं, लेकिन मैं निर्णय करता हूं कि इसकी क्या जरूरत, मुझे तो चलना आता है मैं चला जाऊंगा, जिनको चलना नहीं आता, वे कुचल जायेंगे। अत मैं मक्खन मिसरी लपेटकर कहता हूं—भाई साहब, आप यहां तक ले आए इसका शुक्रिया, रोक दीजिये, यहीं उतर जाऊंगा।

लेकिन इससे भी त्राण नहीं है—'तुमने तो कहा था कि लोदी रोड जाना है, फिर यहां क्या उतरोगे ?'

मेरी विनीत आवाज को वह कायरता का एक अंग मानकर भड़कता है। मेरे साथ वाले सज्जन अब तक अपना और स्कूटर वाले का वजन तोल चुके हैं, उन्हें यह बातचीत असह्य हो रही है। मेरी सम्कारी जबान का वह बेवकूफी का अंग मान रहे हैं, अत वह उतर पड़ते हैं—'तुम जबान सभालकर क्या नहीं बात करते हो और इन्होंने लोदी रोड जाने के लिए कहा था तो क्या दरियागंज होते हुए। मैं चुप था तो तुम क्या समझ रहे थे कि इस पर पिल्ले सवार हैं। एक पैसा नहीं दूगा !' बात बढ़ जाती है और मुझे लग रहा है कि अब वह सद्धान्तिक से व्यवहारिक हो जायगी। मैं नहीं चाहता कि बीच सड़क पर ओलम्पिक में जाने वाले रेसलर लोगों का रिहर्सल यहीं हो, अत बहुत मुश्किल से बीच-बचाव कर बात टलवाता हूं।

दूसरे स्कूटर की प्रतीक्षा में खड़ा-खड़ा मैं एक ही बात रह रहकर सोचता हूं—'क्या दिल्ली आने वाले किसी आदमी की इज्जत है या नहीं अथवा जब कभी कोई दिल्ली के लिए प्रस्थान करे तो अपनी इज्जत प्रतिष्ठा कुछ दिनों के लिए घर में ही रखकर आये।'

मेरा ऐसा सोचना इसलिए हो रहा है, क्योंकि शायद यह पचासवीं-सौवीं बार स्कूटर और टैक्सी वालों से भिड़त की नौबत आयी है जहां हर बार मैं ही सिर झुकाकर बात सह जाता हूं क्योंकि मैंने अपने मन में यह संधि कर ली है कि दिल्ली के पास दिल है ही नहीं।

शून्य मे खोया यात्री

मैं वही शून्य म खो गया था।

क्या यह जगह थी और क्या हो गई ?

तो क्या इसका अथ यह लिया जाये कि जब तक आदमी होता है तभी तक जगह की महिमा भी और आदमी जब चला गया तो उसके साथ साथ स्थान की महिमा भी चली जाती है। *गौतम-बजाज मेरी बात मानने* को तैयार नही होते और मैं बहस करने की इच्छा लेकर आया नहीं इसलिए जब वे कहते हैं कि हम लोगो के लिए कोई फर्क नही पडा, कोई अन्तर लगता ही नही, सभी आश्रमवासी पूववत अपना काम किये चलते हैं। और ऐसा भी नही लगता कि बाबा नही हैं, क्योकि विगत तीन चार वर्षों से वे होकर भी नही थे, स्थितप्रज्ञ अथवा फिर वीतराग !

मुझे रह रहकर अपनी पिछली यात्रा की याद आती है, डेढ वर्ष के लगभग ही तो बीते होगे मैं किसी सम्मेलन के सिलसिले मे यहा आया था और बाबा से मिला था। कितनी सहजता से सत विनोबा अपनी बातें कह जाते थे। मेरी बगल म एक सज्जन जो पहले से ही बठे थे, वे दाढ़ी बढाये हुए थे और मेरी छोटी छोटी मूछें थी, बाबा हसते हुए बोले— इधर मूछ, इधर दाढी और बाबा को दोनो।'

कुछ पूछना हो तो पूछ लीजिये—लिखकर, क्योकि वे सुन नही सकते थे, लेकिन पढकर तुरत जवाब देते थे या फिर जिसका उत्तर देना न चाहें, उसे टाल देते थे, मात्र इतना ही कहकर—'रामहरि'। •

और जिस जगह वे बैठकर मुझसे बातें कर रहे थे उस जगह को घेरकर लिखा हुआ मिला—'रामहरि'।

लेकिन सब होते हुए भी मुझे उस परिवेश की वीरानी ने जैसे हतप्रभ कर दिया। यह मैं छठी बार पवनार आश्रम म आया था। इसके पहले पाचा बार विनोबाजी की उपस्थिति मे और उन दिनो यह आश्रम देशी तथा सवदेशी, बच्चे और बूढे तथा सामाजिक राजनीतिक तथा सास्कृतिक लोगो से भरा रहता था—चहाचह, आज तो ऐसा लग रहा है कि पेड की शाखाए ज्यो की-त्यो हैं, पक्षियो ने चहचहाना या उन पर बैठना भी छोड दिया है। आश्रम वही है, सामने सब्जियो तथा खेती के अ य हरे-भरे पौधे झूल रहे थे, आश्रम की बहने स्वय फावडा चलाकर खेती का काय कर रही थी कोई आये जाय इसकी उ हे कोई चि ता न थी, सदा की भाति अ दर प्रवेश करते ही किताबो की दुकान पर गोवि दनजी स्मित हाथ लिए अपनी आखें पसारे हुए मिले, उनके भी पहले बालविजय ने मुझे पहचाना और मैंने उ हे, सामने धाम नदी भी पूववत बह रही थी—लेकिन सब-कुछ होते हुए भी विनोबा न थ। ऐसा लग रहा था मानो शरीर यथावत् है लेकिन आत्मा उसे छोडकर चली गयी है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मैंने मास्को मे क्रेमलिन मे लेनिन के शरीर को उनकी मृत्यु के पचास साठ बाद भी ज्यो का-त्यो देखा था।

मैं अपनी उत्सुक आख फलाये आश्रम के हर कोने का निरीक्षण कर रहा था, जिसे बालविजयजी ने परखा तथा निमल बहन को बुलाकर कहा कि हम लोगो को आश्रम परिवेश दिखलाने का कष्ट करें। निमल बहन कौन हैं, क्या हैं, इन सारी उत्सुकताओ को अपने म दबाये मैं और मेरे साथ ही रामजी शर्मा, गगाधर, मुरलीधर आदि साथ हो गये। निर्मल बहन ने विनोबा का कमरा दिखलाने के बाद धाम नदी के किनारे करीने से सजायी उन मूर्तियो को एक एक कर दिखलाना शुरू किया, जो विनोबाजी को आश्रम निर्माण के समय खेती योग्य जमीन तयार करते यहा जमीन के अ दर प्राप्त हुई थी। ये मूर्तिया वाकाटक वश के राजा प्रवरसेन द्वितीय के समय की थी, जिसने अपनी राजधानी लवनार ग्राम को बनाया था, जो आज पवनार है।

इ ही मूर्तिया म एक है राम और भरत के मिलन को चित्रित

करती मूर्ति, अद्भुत भावमय। निर्मल बहन हमें बताती हैं कि बाबा ने बहुत पहले यह कहा था कि राम और भरत का मिलन अद्भुत प्रसंग है, जिसे जब भी मैं पढ़ता हूँ तो ऐसा लगता है मानो कोई मूर्तिकार इसे यदि गढ़ता तो कितना अच्छा होता। और इसलिए इसकी परिणति की इस कल्पना के चार पाँच वर्षों बाद जब बाबा यहाँ आश्रम बनाने आये तो उनके ही फावड़े के नीचे यह मूर्ति आ गयी। सच में, यह एक विचित्र बात थी, लेकिन सच्ची।

धाम नदी के किनारे ही विनोबा का पार्थिव शरीर 'क्षिति-जल पावक-गगन-समीरा, पंच तत्त्व यह अधम शरीरा' की उक्ति को चरितार्थ कर गया। इसमें दो राय नहीं कि इस युग के वे एक ऐसे संत थे, जिन्होंने वेदों, उपनिषदों, पुराणों के अतिरिक्त कुरान, बाइबिल आदि कोई ऐसा ग्रंथ नहीं है, जिसे आत्मसात न किया हो और अपने जीवन में उन्हें ढाला भी था। लेकिन उससे भी बड़ी बात यह थी कि वे अपने गुरु गांधी के सच्चे अनुयायी थे, इसीलिए सत्ता की ओर कभी उन्होंने भूलकर भी नहीं देखा, और अपना संपूर्ण जीवन रचनात्मक कार्यों में ही लगा दिया।

देश की सबसे बड़ी समस्या भूमि की है, जिसके कारण भारत गाँव गाँव में भूमिपतियों और भूमिहीनों के बीच बँट गया है। विनोबा ने इस समस्या को जिस भाँति पकड़ा था और केरल से लेकर कश्मीर तक पद यात्रा द्वारा इसे मौन क्रांति की संज्ञा दी थी, वह दुनिया में अपने ढंग का अकेला प्रयोग था। भूदान और जीवनदान जैसे शब्दों का आविष्कारक शून्य में पत्थर नहीं चला रहा था, वरन भारत की जीवंत समस्याओं का समाधान सत्ता से अलग व्यवस्था के द्वारा बिखेर रहा था।

विनोबा शायद गांधीवादी चेतना के अन्तिम ईमानदार प्रहरी थे, यही कारण है जो उनके साथ ही गांधीवाद की एक विरासत भी चली गयी।

हम जब आश्रम से विदा होकर निकलने लगे तो प्रवेशद्वार के पास ही आमों के दो वृक्षों पर जयप्रकाश और प्रभावती नाम देखकर ठिठक गये—यह क्या है? मेरे मन में यह सहज अनुभूति हुई कि आम्रपाली के समान ही यह भी आमों की कोई विशेष जाति तो नहीं है, जिसका

नामकरण जयप्रकाश तथा प्रभावती कर दिया गया। लेकिन जानकारी मिली कि जे० पी० और प्रभावती जी ने बिहार से लाकर अपने हाथों ये दोनों पौधे लगाये थे, जिन्हें सन विनोबा अपनी खिड़की से प्रायः देखा करते थे। यह दूसरी बात है कि जे० पी० या प्रभावती जी अपने लगाये वृक्षों में आये फल नहीं देख सके और स्वयं विनोबाजी भी उनके फल नहीं खा सके। लेकिन किसी अनजान पहरुआ के समान पवनार आश्रम में प्रवेश करते ही ये दोनों युवा आम्र वृक्ष हर किसी को कुछ याद दिला देते हैं।

याद है मुझे अच्छी तरह कि जब विनोबाजी जीवित थे और मैं यहां आया, तो उसके पहले या बाद में सेवाग्राम भी जरूर गया। और जब कभी आते या जाते मैं सेवाग्राम गया तो रह-रहकर एक बेचैनी का शिकार भी होता रहा—बापू के बिना उदास, रुआंसा, खोया खोया सा खोया खोया सेवाग्राम, दूसरी ओर चहचह और महमह करता हुआ पवनार। उस समय मेरे मन में प्रायः एक बात उठा करती थी कि जब विनोबा नहीं रहेंगे तो पवनार का क्या होगा, वही तो नहीं जो सेवा ग्राम का हो रहा है?

और इस बार जब पवनार से सेवाग्राम पहुंचा तो वहां की ताजगी ने मुझे भरोसा दिया कि बापू न होकर भी यहां के चप्पे चप्पे में विराजमान हैं, क्योंकि बापू ने इस आश्रम नहीं बनाया था उनके लिए मात्र यह माध्यम था, जिससे देश और विदेश के हजार लोग भारत की गरीबी और गांव से परिचित हो सकें। आज वह सेवाग्राम अपने आप में पूर्ण लगा इसलिए भी कि वहां आज भी कहीं कोई बनावट नहीं है, जो भी है वह यथावत है और यथावत यथाप्रस्तावित से अलग होता है।

बापू के समय न तो कोई प्रधानमंत्री था और न कोई भूतपूर्व प्रधान मंत्री, जिसकी छाया तले यह बिरवा पनपा हो। भगवान भला करे उन लोगों का, जिन्होंने न तो सेवाग्राम का स्वरूप बिगाड़ा और न ही यहां की शान्ति भंग की। कम-से कम आज भी यहां आने पर यह भास हो ही जाता है कि दुनिया का सबसे बड़ा आदमी कैसे और किस

झोपड़ियों में रहकर तैंतीस या चालीस करोड़ से लदी नौका को खेता था।

हम तो चमचमाती सड़कों से यहां आ गये, लेकिन जवाहरलाल जी, राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद आदि देश के सभी बड़े छोटे नेता उन दिनों बैलगाड़ी में सेवाग्राम आते थे, क्योंकि न तो यहां तक सड़क थी और न बिजली की रोशनी। बापू के कमरे में अन्य छोटी-बड़ी चीजों के साथ ही वह लालटेन भी ज्यों की-त्यों रखी हुई है, जिससे न जाने उन्होंने कितने महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों को लिखा पढ़ा होगा और इसकी ही रोशनी में न जाने कितने दस्तावेज बने मिटे होंगे।

रह रहकर मन में एक बात उठती है कि जब इन झोपड़ियों में राष्ट्र-पिता रह सकते थे तो क्या दो चार दिनों के लिए भी राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री अथवा केन्द्रीय और राज्य मंत्रिमंडल के सदस्यगण नहीं रह सकते जिससे उन्हें सही भारत की जानकारी और गरीबी की वास्तविक अनुभूति हो सके।

मेरे लिए आज भी सेवाग्राम एक तीर्थ के समान है, जीवित तीर्थ जहां गांधी परिवार के धरोहर स्वरूप बा (श्रीमती निर्मला गांधी, स्वर्गीय रामदास गांधी की पत्नी) रहती हैं और जब कभी मैं वहां गया और वे रहीं तो यह भान होता कि माता कस्तूरबा के दर्शन कर रहा होऊं। इस बार जब मेरे साथ के लोग आश्रम-परिसर का मुआयना कर रहे थे तो मैं बा की तलाश में निकला और उन्हें रसोई के बाहर स्वयं अपने खाने का बर्तन धोते समय ही जाकर किसी बच्चे के समान पीछे से उनकी आंखें बन्द कर दीं और लुका चोरी के समान मैंने पूछा—बा, बताइये तो कौन आया है?

वे हंस पड़ीं—बेटा आया है।

और तब उनके उस कक्ष में गया जिसके बाहर 'कार्यकर्ता निवास' लिखा था तथा बांस की खपचियों के किवाड़ लगे हुए थे। बा ने 'नहीं-नहीं' कहने पर भी हम सबों के लिए नाश्ता बनाना शुरू कर दिया तथा जिस प्रेम से 'आलू पूहा' और चिवड़ा खिलाया, वह स्वाद किसी बड़-से बड़े घर या होटल में किसी को नसीब नहीं हो सकता है।

मैंने बा के हाथों में 'मुक्तकंठ' का समापन अंक पकड़ा दिया तथा

इतना ही कहा—'बा, जानता हू कि आपकी आखें कमजोर हैं, लेकिन पष्ठ दो सौ तिरेपन जरूर पढ़ लीजियेगा।'

पष्ठ दो सौ तिरेपन, जिस पर बा से पिछली बार मैं जब मिलकर गया था उसने बदा अपनी डायरी से लेकर मैंने दिया था, जिसम लिखा था— बा मिली। अपनी कुटिया के बाहर ही। देखकर पलभर पहचान मे अवाक रही। फिर तुरत अपनी दाई से बोली—बेटा आया है। कितना अच्छा लगा मुझे और उनकी रोम रोम मे पुलकन भर गयी—क्या खिलाय, क्या दें क्या करें? सतरा केला-अमरूद चूडा-चाय के बाद उन्होने मेथी के पराठें तिल के लड्डू और चूडा आदि की पोटली भी बाध दी—रास्ते का खाना यह स्नेह केवल मा ही दे सकती हैं और बा मा से भी बढकर हैं।

बा—राष्ट्र की कितनी बडी धरोहर है। बापू की पुत्रवधू, रामदास गाधी जी की पत्नी। आवास के नाम पर सेवाग्राम की वही कुटिया बासो-बल्लियो से घिरा। खपरैल का छप्पर तथा ऊबड खाबड ग्रामीण परिवेश। गाधी परिवार का अपना कोई घर नही है, यह आश्रम की कुटिया ही आश्रम भी है और आश्रय भी है।

दूसरी ओर गाधी के नाम पर, गाधी के इस देश मे क्या नही हो रहा है? लेकिन मुझे खुशी है कि गाधी रक्त म अभी भी निष्ठा और चेतना का अवशेष है। लेकिन यह आखिरी पीढी है शायद।

मैं गाधी और विनोबा क परिवेश मे सेवाग्राम और पवनार की परिधि म खो जाता हू। गाधी और विनोबा आज न होकर भी हैं, दूसरी ओर जो आज अपने को गाधी और विनोबा स भी बढकर हैं वे रहकर भी नही हैं।

मेरी दृष्टि एक यायावर या यात्री की दृष्टि है, मैं अधिक इसम डूबने के लिए भी तयार नही हू। अत जिस प्रकार पवनार म जयप्रकाश जी और प्रभावतीजी क लगाये वक्षो को प्रणाम कर बाहर हो गया था, वैसे ही यहा भी माता कस्तूरबा के हाथो लगे बकुल और बापू के हाथ से लगे पले-बढे पीपल को सिर नवाता हू और बाहर हो जाता हू। कम से कम इन वक्षो की छांव आज भी शीतल तो लगती है।

गाधी भी एक राह है

पिछले पद्रह बीस दिना से गाधी न मेरा पीछा छोड रहे हैं और न मैं उन्हे छोड रहा हू। सेवाग्राम से लौटा ही या कि मोतिहारी का निमत्रण आ गया और जब मोतिहारी गया तो वहा के चप्पे चप्पे म उनकी यादें बिखरी हुई मिली। जैसे कोई पेड कि इसके नीचे वे खाट पर बठे थे, कोई मकान कि इसमे गाधीजी ठहरे थे, कोई विद्यालय कि इसकी नीव बापू ने ही रखी थी, कोई आश्रम कि इसमे लगे पेडो को माता कस्तूरबा ने अपने हाथो सीचा था और इसी प्रकार की अनेक जीवन्त बातें, किस्से, कहानिया और उसमे ऊब चूम होता मैं पथिक!

गाधी जी जब १९१७ म चम्पारण गये तो उन्होने नीलहो के अत्याचार से बचने के लिए किसानो और मजदूरो से साक्ष्य लेना प्रारभ किया और उसके लिए जो टीम बनाई उसमे राजेन्द्र बाबू आचाय कृपलानी, अनुग्रह नारायण सिंह, ब्रजकिशोर प्रसाद शमु प्रसाद, रामनवमी प्रसाद आदि अनेक लोगो को रखा, जिनमे से कइयो को आज इतिहास नही जानता है। जब चम्पारण का काम समाप्त हुआ और गाधी जी की प्रसिद्धि घर गाव देहात मे ही नही देश के कोने-कोने म फल गयी और कमवीर गाधी महात्मा गाधी के नाम से मशहूर हुए। उसी समय राजेन्द्र बाबू ने इस सबध मे एक पुस्तक लिखी—'चम्पारण मे महात्मा गाधी', जिसकी कुछ पक्तिया यहा दे रहा हू—'सत्याग्रह और असहयोग के सबध मे जो कुछ महात्मा गाधी ने सन् १९२० से १९२२ ई० तक किया, उसका आभास चम्पारण के झगडे मे ही मिल चुका था। दक्षिण अफ्रीका से लौटकर महात्मा गाधी ने महत्त्व का जो पहला काम किया था, वह चम्पारण मे ही किया था।'

मोतिहारी, जो चम्पारण जिले का मुख्यालय है, वहा से वापस आते ही गाधी परिवार की सदस्या और मेरी मुहबोली दीदी श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी का पत्र मिला—'इन दिनो मैं बापू की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' पढ रही हू, तुमने भी पढी होगी, लेकिन चाहूगी कि एक बार तुम और पढ लो तथा परिवार म सबो को पढवा भी दो।'

पत्र पढते ही दो महीने पूर्व डा० डी० एम० कोठरी द्वारा दिये गए भाषण का अश सामने आकर खडा हो गया—इस देश मे यदि कोई गीता न पढे, रामायण न पढे, कुरान और बाइबिल न पढे तो वह क्षम्य है, लेकिन यदि किसी ने गाधीजी की जीवनी न पढी हो तो वह अक्षम्य है। मैं तो बराबर 'एक्सपेरिमेन्टस विथ ट्रुथ' को अपने साथ रखता हू और बराबर उसके किसी-न किसी हिस्से को पढता रहता हू।' आज के भारत के सबसे बडे शिक्षाविद ने गौरव के साथ यह बात कही।

'मा, मैंने गाधी फिल्म ग्यारहवी बार देखी। कितना अच्छा लगता है दुनिया के उस ऐतिहासिक पुरुष को देखना, जो अपने देश मे पदा हुए थे। मुझे तो गाधी फिल्म का एक एक डायलॉग याद हो गया है। पापा न गाधी जी को देखा था या नही ?' यह पत्र मेरे लडके का मा के नाम आया है।

'गाधी' फिल्म मे एक दृश्य है कि गाधीजी नदी किनारे खडे है, वहा कुछ ग्रामीण स्त्री पुरुष स्नान कर रहे हैं। उन्ही मे एक स्त्री अपनी साडी के आधे हिस्से को पहने ही आधे को पानी मे साफ कर और किसी प्रकार स्नान कर सुखा रही है। दूसरा कोई भी वस्त्र उसके पास नही है। भारत की इस चिथडे निथडे गरीबी को देखकर बापू हिल उठते है और वह जहा खडे हैं वही से अपनी चादर उस स्त्री की ओर पानी मे ही बहा देते है, जिसे वह लपककर उठा लेती है। बडा ही करुण वास्तविक और मोहक दृश्य है वह, जिसे नूर फातिमा नाम की एक लडकी ने निभाया है। सहसा एक दिन वह पटना की सडको पर रिक्शा पर सवार मिल गयी, देखत ही रिक्शा रोककर मिलने आयी और कहा—'भाई साहब, सर ऐटनबरो का खत आया है। मेरे पाट को उन्होंने बहुत-बहुत सराहा है। यह सब आप लोगो की दुआ है।' सतोष की आभा उसके मुह पर और चमक आयी

मे छा जाती है।

कही भी गाधी से छुट्टी नही है। गाधी न मुझे छोड रहे हैं और न मैं उन्ह छोड रहा हू। अवान्तर रूप से भागती जिन्दगी म अनायास वे कही-न कही, किसी न किसी कोने से टपक पडते हैं और मुझे बार बार यही तो लगता है कि इस देश की मिट्टी का नाम ही है गाधी, तभी तो वह जड मूल मे इस कदर जम गयी है कि न हटाए हटती है और न भगाए भागती है।

लम्बे चौडे-तगडे चार जवान घोडे पर सवार दिल्ली की ओर जा रहे थे। रास्ते म एक अदना सा आदमी गदहे पर सवार होकर उनके साथ हो लिया चारा घुडसवारा को लोग-बाग देखें तो उत्सुकता स्वाभाविक थी। हर किसी ने जानना चाहा—'आप लोग कहा जा रहे हैं ?'

'हम सब दिल्ली जा रहे हैं। चारो घुडसवार मुह खोलें' उसके पहले ही गदहा पर सवार व्यक्ति बोल पडें।

कुछ ऐसी ही स्थिति हुई उस समय जब दिल्ली जाती हुई गाडी मे मैं सवार कुछ भी बात करने को हाऊ कि मेरे सहयात्री पहले हो उसे सुनाने को तैयार। इस बार डिब्बे म पजाब की जगह कश्मीर का मामला ही गम था। देश के किसी हिस्से मे कुछ हा उसका मानचित्र भी किसी को पता हो या नही लेकिन उस पर आधिकारिक रूप से हर आदमी बात कहे बिना मानगा नही। इस देश की नियति यही है। अत डिब्बे म मुझको छोडकर हर समझदार यानी शेख अब्दुल्ला से लेकर फारुख अब्दुल्ला और जी० एम० शाह से लेकर बेगम अब्दुल्ला तक की बात को या रख रहा था मानो अभी अभी ये बातें करके कश्मीर से वापस चले आ रहे हो।

'मुझको तो एक सप्ताह से यह पता था कि कश्मीर म सत्ता परिवतन होने वाला है। एक सज्जन जो बठे हुए सिगरेट का कश ले रहे थे उन्होने इस ताव के साथ कहा माना वे कश्मीर से ही चले आ रहे हो।

'देखिये आपको पूरी जानकारी नही है कि क्या-क्या हुआ और क्या-क्या होने वाला है। पहले वहा बात चल रही थी कि फारुख को डिसमिस कर राष्ट्रपति शासन लागू किया जाये। बाद मे विचार बदल गया और सत्ता परिवतन हुआ।' एक दूसरे महाशय इस प्रकार अपने विचारा को रख रहे थे मानो गहमत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी अथवा श्री

राजीव गाधी न इनसे ही सलाह मशविरा करके यह कदम उठाया हो ।

'साहब, इस समय यह नही होना चाहिए था। पजाब और कश्मीर ये सभी सरहद पर पडते है। वहा के लोगो को नाराज कर नही चलना चाहिए।' एक भाई अपने को विवश महसूस कर रह थे।

अलीगढी कुरते पाजामे मे लैस, एक युवा-तुर्क बीच म कूदे—'क्या बकवास आप करते हैं। वहा भारत विरोधी हवा बह रही थी। लोगो को उकसाया जा रहा था। जितना जल्द यह कदम उठाया गया, उतना ही देश के लिए सुरक्षित है। हम लोगो की आदत हो गयी है हर बात मे नुक्ता-चीनी निकालना।' अपनी बात का जमता प्रभाव वह नवजवान देखकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था तथा हाल मे ही प्राप्त ट्रेनिंग पर खुश हो रहा था कि कही कोई पार्टी अथवा सरकार विरोधी बात चले तो उसे वही कुचल दो।

'जनाब, बात तो आप गलत नही कर रहे हैं लेकिन सविधान भी तो कोई चीज है। कश्मीर मे जो कुछ भी हुआ है, उसमे सविधान को ताक पर रख दिया गया है। फारुख अब्दुल्ला की बात नही है, बात है जनतत्र की। इस तरह से यदि जनतत्र का गला घोटा जाता रहा तो देश म प्रजा-तान्त्रिक मूल्य तो हवा हो जायेंगे।' बहुत देर से अपनी बारी आते नहीं देखकर एक बुजुर्ग-से सज्जन ने, जो कही के प्रोफेसर अथवा रिटायर्ड पोलिटिशियन नजर आ रहे थे, दम के साथ अपनी बात कही।

मैं अपने आप म उलझा रहा। एक शब्द न तो मैंने मुह से निकाला और न ही किन्ही की बात मे ही कोई रुचि ली। मेरी आखो म न तो डॉ० फारुख थे और न ही दिल मे कही जी० एम० शाह। केवल कश्मीर की प्यारी वादिया और घाटिया थी, जिनसे कला की खूबसूरती टपकती है। चिनार और सफेदा के दरख्त थे, जिनकी शोभा को निहारते रहने का मन करता है। सेब और अजार के बाग थे, जिनमे मौसम की सुरमई ललाई झाकती होती है। डल और वूलर जैसी झीलें थी, जिनकी सुषमा को बखानते कवियो को शब्द नही मिलते। निशात और शालीमार जसे बाग थे, जिनमे तितलियो के समान उडते रहने का हर सलानी का मन करता है। शकराचार्य पर्वत और हजरतबल जसे पवित्र स्थल

प्रहरियो ने रोका, लेकिन उसके बार बार आग्रह करने पर जब किसी ने महाराज को आकर इस भिक्षु के आने की बात बताई तो विजय-मद मे भूले सम्राट् ने भिक्षु को आने की आज्ञा दी। भिक्षु ने अशोक के सामने अपने पुत्र की लाश उतारकर रख दी और कहा—'महाराज, इसे जिदा कर दें।'

'भला मत भी कही जीवित होता है?' अशोक का दद भरा स्वर वातावरण मे गूजा।

'महाराज, आप जिसे जीवित नही कर सकते उसे मारने का आपको क्या हक है?' भिक्षु का स्वर गिरा के ममान अट्टहास कर उठा—'जिसे तुम जीवित नही कर सकते, उसे तुम्हे मारने का क्या हक है?

और कहते हैं कि इस एक वाक्य ने ही विजयी अशोक को भिक्षु अशोक बना दिया। छत्रपति महाराज अशोक कषाय वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षु हो गया और कहते हैं कि तभी से मगध साम्राज्य की लिप्सा भी शान्त हो गयी। उस जमाने मे मगध की राजधानी थी—'पाटलिपुत्र'। और यह गाडी उसी पाटलिपुत्र से चलकर हस्तिनापुर की यात्रा पूरी करती है तथा पुन वापस हो जाती है पाटलिपुत्र।

मैं पाटलिपुत्र और हस्तिनापुर के बीच का एक यात्री, प्राय सोचा करता हू—काश, युधिष्ठिर का सत्य और अशोक की करुणा का आज भी कोई मिलाप कर पाता तो यह धरती सही मानो मे स्वग हो जाती।

यहा तो आज हाल यह है कि मन के हर कोने मे स्वार्थो का एक ऐसा भयानक कीडा वास कर रहा है, जिसे हम नैतिक मूल्यो का चमगादड कह सकते हैं। पक्षियो की बारी आये तो भी उसकी पौ बारह—मैं तो वृक्षो की डालो पर रहता हू और उडता हू। पशुओ की जब बारी आये तब भी कोई हज नहीं—मैं तो स्तनपान कराती हू।

कौन उठायेगा बीडा इनमे पार जाने के लिए।

मुझे न पता, न वास्ता कि वह कौन थी

अगर रात न गयी होती, प्रात इतने बिनसहारे हमारे सिर पर सवार न हो गया होता, यदि कानपुर का स्टेशन हमारे सामने न हुआ होता और वह रात का सहयात्री इस तरह मुझे अकेलेपन के साथ म छोडकर न चला गया होता, तो फिर यह दुकेले की यन्त्रणा मुझे नही भोगनी पडती।

गाडी जब चली तो मैं कुछ अनमना सा इधर उधर देखने लगा, मानो मेरा कुछ कही खो गया है, मानों कोई छोडने आया हो और अब तक हवा मे उसके हाथ विदा के लिए हिल रहे हो। मानो किसी ने विदाई तो कर दी हो लेकिन उसकी आखें अभी तक मेरा पीछा कर रही हो।

धूप के टुकडे पेडा पौधा पर बेतरतीबी स छिटकने लगे थ। इक्के-दुक्के धनमानुष से किसान अपने बैला के साथ बाहर निकल आये थ। और कानपुर खत्म होते ही गाव घर की महिलाओ का बाहर अन्दर आना जाना प्रारभ हो गया था। कोई घूघट काढे, तो कोई अपने आपको अधनग्न की मुद्रा मे।

पहली बार मुझे ऐसा लगा कि प्लेटफाम पर रुकी गाडी का हाल हिसाब कितना अच्छा होता है—खोमचेवालो, फेरीवालो, कुलिया, यात्रिया का डिब्बो मे ताकन झाकने वालो को देखत सुनते समय कट जाता है। और यह रात सम्भ्रात प्रथम श्रेणी का कूपे अनमनेपन की राह म मुझे काट सा रहा है। मैंने बाहर से अपन आपको समेटकर ज्यो ही अदर की दुनिया म खोना चाहा कि पहली बार उनकी आखो स आखें टकरा गयी।

स्याह सफेद बालो के गुच्छे, सावलेपन को परे ढकेलती ग्रीवा के ऊपर की तरतीबी, आयु रेखा साठ के आसपास होने पर भी कहा चेहर पर न तो कोई थकान, न पीडा, न झुरिया की निशानी और न ही कही किसी

प्रकार की तिक्तता !

'आपको मैंने तकलीफ दी।' माफ करेंगे। इतने सवेरे कोई डिब्बा खुलता नही है। आपके साथ वाले जब उतरने लगे तो कंडक्टर ने मुझसे कहा कि इसी मे मै बैठ जाऊं। आप शायद अभी सोते ?' जैसे कोई पाच सितारा होटल का बेयरा कायदे करीने से ट्रे मे सजाया सा चाय का सामान रख दे, वैसे ही करीने से मुंह से निकली एक एक बात।

'नही, कोई ऐसी बात नही है। यो भी सूर्योदय के बाद मुझे नीद नही आती है।' मैंने भी बातचीत म योगदान आवश्यक समझा।

बाथरूम से जब निवृत्त होकर मैं वापस हुआ तब तक बेयरा भी हाजिर था और वह महिला दो चाय का आदेश द रही थी। समझ गया एक मेरे लिए है। अच्छा लगा इस तरह की शिष्टता यदि कोई पुरुष यानी भी दिखलाये तो अच्छा लगता है, यह तो महिला होकर इस प्रकार का व्यवहार कर रही थी, मानो हम दोनो कलकत्ता से साथ चले आ रहे हो। मैं उनके सदव्यवहारो से ऐसा नमित हुआ कि बाहर की दुनिया भूलकर अन्दर की दुनिया मे ही खो गया।

'आप कहा तक पढी हैं ?' अनायास मैंने पूछा।

'क्यो, बी० ए० तक !' वे कुछ अचकचाती सी बोली।

सच म बात कुछ अटपटी-सी थी कि कोई परिचय की बात नही और न तो मौसम का हाल चाल, बल्कि कोई सीधे शिक्षा पर ही उतर आए। खैर ऐसे समय म कही न कही से कुछ व्यवधान आ जाता है तो मन को राहत भी मिलती है। इसी समय बेयरा चाय लेकर आया और मेरे लिए पहले वही चाय भी बनाने लगी। मेरे विरोध करने पर बोली—'यह काम तो औरतो का है।'

हम दोनो ने थरमस के ऊपरी हिस्से मे चाय लेकर जब सुडपना शुरू किया तो समय और भी गहरा हो गया—अब तो कही-न-कही से किसी ऐसी बात की शुरूआत करनी ही होगी, तो कुछ देर तक आगे बढे, मेरे मन ने कहा। और इसके साथ ही मैंने अपने अन्दर किसी प्रकार का एक संकल्प-सा ठान लिया और चाय के अन्दर झाकते हुए मैंने उनसे कहा —देखिए हम दोनो अपरिचित हैं और इस कूपे म अकेले भी हैं। फिर

यह भी नही पता कि भविष्य मे हम कभी मिलेंगे भी या नही। मैं यह चाहता हू कि हम दोनो एक दूसरे से परिचित भी न हो लेकिन मैं जिन-जिन प्रश्नो का उत्तर पूछू वे आप बिना किसी झिझक के मुझे बताती चलें ?'

'मैं ठीक से समझ नही सकी कि आप क्या जानना चाहते हैं तथा मैं क्या बता पाऊगी ! लेकिन प्रयास करूगी कि आपको किसी प्रकार की निराशा न हो। किसी झील मे बरसती बदो के समान उनके मुह से बातें निकलती थी।'

'आप इस आयु मे भी कितनी मोहक और स्वस्थ प्रसन्न दिखायी देती हैं। आपकी शादी किस आयु में हुई तथा आपके कितने बच्चे हैं ?' सहज प्रश्न था।

'मेरी आयु इस समय बासठ हो रही है और आज से ठीक बयालीस साल पहले मेरी शादी हुई थी। उस समय दुल्हन के रूप मे जिस किसी ने भी मुझे देखा था यही कहा था कि ऐसी बहू इस गाव कस्बे मे कोई दूसरी नही आयी। और मैं जिस गाव मे पैदा हुई थी, वहा वालो की भी यह धारणा थी कि मेरे समान कोई सुन्दर लडकी अब तक उस गाव म पैदा नही हुई थी।' कुछ सकुचाते लजाते हुए वह बोला— लेकिन वह अतीत की बात आज क्यो कुरेदी जाय। इस समय मेरे दो बच्चे हैं दोनो पढ लिखकर काम कर रहे हैं। एक लडका आर्मी मे था, जो नागालैंड मे दो साल पहले शहीद हो गया। बच्चो के पिता को गुजरे भी दस साल हो गये।'

'आपके बच्चो की शादी हो गयी और आप क्या उनके पास ही रहती हैं ? इसके साथ ही एक बात बिना झिझक यह बताइये कि बच्चो का और उनकी बहुओ का आपके प्रति क्या भाव रहता है ? क्या आपको उनके व्यवहारो से कभी चोट नही पहुचती है ?' मैंने एक साथ कई सवाल उनके सामने छितरा दिए।

वह बिना हतप्रभ हुए बोली— दोनो लडको की शादी हो गयी है तथा बडे के दो तथा छोटे का एक बच्चा भी है, बहुत प्यारा सा। मैं साल मे तीन चार महीना बडे के पास और लगभग इतना ही छोटे के साथ गुजारती

हू। कभी कभी बडी बहू की आखो म यह भाव जरूर दिखायी देता है कि मैं कहा से आ गयी, लेकिन कभी उसने अपने व्यवहारो मे यह भाव आने नही दिया। और मैं अपने पोतो मे ही इस प्रकार खो जाती हू कि जरा भी मुझे कुछ भान नही होता। यह बहुत कुछ सास के अपने व्यवहार पर भी निभर करता है तथा आयु के अ तर के साथ ही यदि किसी तरह कीटकराहट हो तो उसे किस तरह अपन व्यवहार से हल्का करना चाहिए यह कला जिस स्त्री को आ जाये, वह कभी दुखी नही होगी। कम से-कम मैं यह जानती हू और मेरे लडके बहुत अच्छे हैं।' महिला की आखो म एक सतोष तैर रहा था।

'अब मैं आपसे एक ऐसा सवाल करने जा रहा हू, जिसे कोई पुरुष किसी महिला और वह भी आपकी उम्र की महिला से, जो हर तरह से सभ्रा त और सुरुचिपूण हो, नही करना चाहेगा और न तो करेगा। लेकिन मैं जानता हू कि आप अ यथा न लेगी। इसीलिए पहले ही मैंने कहा कि हम एक दूसरे से परिचित न हो। इतनी भूमिका के बाद मैं सीधा अपने सवाल पर आया— पति के साथ आपका जा यौन जीवन रहा उसके अतिरिक्त भी क्या कभी आपका किसी पुरुष से चाहे या अनचाहे यौन-सबध हुआ था? क्या पति की मृत्यु क बाद आपकी ऐसी चाहना हुई?

लगा जसे मेरे प्रश्नो को सुनकर उन महिला के शरीर म कोई बिजली का तार छू गया लेकिन उनकी सभ्रातता म रच मात्र भी कही कोई कमी नही आयी बोली—'सच म ऐसे प्रश्न की मैं कभी कल्पना भी नही कर सकती थी और वह भी ट्रेन म कोई अनजान आदमी मुझसे इस तरह की बातें करेगा। लेकिन मुझे एक बात बताइये, आप इन प्रश्नो का उत्तर क्यो चाहते हैं?'

अब मेरी परीक्षा की बारी थी। यदि मेरी ओर से कही कोई भी चूक हुई तो वह कभी भी इन प्रश्ना का उत्तर नही देंगी, अत मैंने साफगोई का सहारा लेते हुए कहा—'मैं आपको अपना नाम नही बताऊगा लेकिन मैं एक लिखने पढने वाला आदमी हू और इन दिना महिला जीवन अथवा यौन-समस्याओ पर कुछ विशेष काय कर रहा हू, जिस सिलसिले म मैंने अपनी स्पष्टता के साथ आपसे ये प्रश्न पूछे हैं। चाहता हू कि आपका उत्तर

-वेभिझक मुझे प्राप्त हो।

साफ ढग से मैंने महसूस किया कि वह किंचित अस्थिर-सी हुई, लेकिन जिस ऊचाई की वह महिला थीं, उन्होंने तुरत अपने को सामान्य किया और बोली—'आपने अनजाने म मुझे वही कुरेद दिया है, मैं आपके प्रश्नो का क्या जवाब दू ? लेकिन आपको निराश नही करूगी। पति के अतिरिक्त तीन बार तीन व्यक्तियो से मेरे यौन सबध हुए हैं और यह भी एक विचित्र स्थिति है कि तीनो तीन परिस्थितियो मे। पहला शादी के पहले मेरे ट्यूटर ने मेरे साथ ऐसा सलूक किया था, जब मैं बिलकुल अनभिज्ञ थी, मात्र पद्रह वर्षों की। उसके बाद शादी होने और बच्चो के बाद चालीस साल की आयु मे मेरे मित्र के एक पति ने मुझे इसके लिए विवश किया और मैं स्वीकार करती हू कि उस समय मेरे मन मे भी कहीं-न-कहीं कोई कमजोरी आ गई थी। और तीसरी बार ऐसे भयानक समय मे मुझे इस गर्त मे गिराया गया, जब मैं समझती हुई भी नासमझ हो गयी। पति की मृत्यु के तीन साल बाद जब मेरी आयु पचपन पार की हो रही थी, हरद्वार के एक आश्रम मे हम चार महिलाओ को रात मे एक कमरे मे ध्यान के लिए वहा के प्रमुख योगी अथवा सन्यासी ने बुलाया। कुछ मत्र जाप के बाद बत्ती गुल कर दी गयी तथा कहा गया कि हम अपने कपडे भी हटा दें, वे साधना मे बाधक हो रहे हैं। हमारा मन कभी भी इसके लिए तयार नही था। लेकिन साथ की एक महिला जो कुछ कहा जा रहा था उसका पालन जल्दी जल्दी स्वय भी कर रही थी तथा हम सबो को प्रेरित कर रही थी। बाद मे पता चला कि वह आश्रम की ही वधुआ वनिता थी। जब हम विवस्त्र हो गये तब हम चित लेट जाने के लिए कहा गया और चाहे कुछ भी हो एक भी शब्द मुह से निकालने की मनाही की गयी। और इस प्रकार रात की उस कालिमा मे उस एक पशु ने चारो महिलाओ के साथ मुह काला किया। सवेरा होने के पहले ही मैं आश्रम छोडकर भाग खडी हुई।

'लेकिन मैं साफ बता दू, इस तरह की परिस्थिति आने पर नारी कुछ भी समझ नही पाती है कि वह क्या करे। मेरे सामने ये तीनो क्षण नरक के समान कौंधते रहते हैं, जो शुरू और समाप्त भी एक साथ हुए और मेरी ... भी इनके प्रति कोई आसक्ति लगाव नही रही। मैंने सदा अपने पति

क ।ही भगवान माना और आप जानते ही हैं कि हिन्दू स्त्री का जीवन पति के साये मे ही बीतता है। मेरे पति देवता थे। मैं एक क्षण के लिए भी उन्हे कभी भी अपने से अलग नही रख पाती हू।' यह कहती हुई वह सहसा रो पडी और वह कूपे तथा चलती गाडी सब-के-सब मुझे काट खाने लगे। मुझे लगा कि मैंने अनजाने म ही अपराध कर दिया है कि इनसे इस तरह की बात की और उनकी महानता के आगे मुझे अपनी क्षुद्रता का भान होता रहा कि उन्होने ऊचाई के साथ मेरे प्रश्न का उत्तर दिया।

'मुझे माफ करेंगी।' कहता हुआ मैं उनके चुप होने की प्रतीक्षा करने लगा। तब तक गाडी टुडला के आसपास पहुच चुकी थी। मैं समय को खाली नही जाने देना चाहता था, अत पूछा—'आपको कभी आर्थिक कष्टो का भी सामना करना पडता है?

आचल स आखें पोछती हुई वह बोली—'नही, ऐसी मेरे साथ कोई समस्या नही है। मेरे पति मेरे लिए दो मकान और एक लाख से अधिक कर छोड गये हैं। मकान का किराया ही दो हजार के करीब आ जाता है। बल्कि आज भी मै अपने पुत्रो से कुछ भी नही लेती। जब कभी उनके यहा जाती हू तो दो चार सौ रूपया का सामान लकर।'

'आपके पास खाली समय तो बहुत रहता होगा, उसका उपयोग आप कैसे करती हैं?' मैंने जानना चाहा।

'जिन्दगी ऐसी है कि किस तरह से समय कट जाता है पता ही नही चलता। और यदि कोई समय मिला तो धार्मिक पुस्तकें पढने म उसे लगाती हू। उसस मन मे बडी शान्ति मिलती है। मै तो यही मानती हू कि भगवान ही सबस बडी चीज हैं।' उनके वाक्य पूरा होते-न होते टुडला स्टेशन पर गाडी का रुकना और खोमचा वालो का शोर शराबा फट पडना साथ-साथ प्रारभ हो गया।

हमारी बात कुछ पूरी, कुछ अधूरी रह गयी। लेकिन मेरे मन को सतोष हुआ, उनसे मिलकर, उनसे बात कर, जो हर तरह से अपरिचिता ही रह गयी। मैंने अपन वाद का अतिक्रमण भी नहीं किया।

टुडला के बाद अलीगढ म रुकना और डिब्बो म टिड्डी दल के समान ही यात्रियो का प्रवेश छठी का दूध याद दिला दता है। अत वह महिला तथा मैं दोनो अपने अपन सामान और अपनी-अपनी इज्जत की रक्षा म ही उसके बाद मशगूल हो गये।

इन नामो पर फिदा होने का मन करता है

आजादी के बाद कई तरह की क्रान्तियो की शुरुआत हुई—हरित क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, मलेरिया उन्मूलन आदि-आदि, लेकिन सही मानो मे जो एक क्रान्ति हुई है वह है यात्रा अथवा यात्री क्रान्ति। याद कीजिये तीस चालीस-पचास साल पहले गाव का कोई आदमी यदि दिल्ली, काशी, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, रामेश्वरम बद्रीनाथ चला जाता था और वापस आता था, तो गावो मे लोगो की भीड उसे देखने के लिए जुटती थी, पाव-पूजन होता था, सवाल जवाब में कई रातें तथा दिन बीत जाते थे। लेकिन अब अब तो हाल यह है कि गाव का भी आदमी मुह धोता है हरिनगाव मे, तो चाय पीता है अलीगढ मे, लच लेता है दिल्ली मे और रातें काटता है मथुरा मे और भोर होते-न होते गाव मे हाजिर।

पहले एक-दो लोग कही चले जायें, चले आयें तो नायाब चीज मानी जाती थी और अब कुनबा का कुनबा यात्रा पर चला जा रहा है—कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, वष्णवदेवी, अमरनाथ, बद्रीनाथ, ऋषिकेश तथा मसूरी, नैनीताल, रानीखेत आदि-आदि। मानना पडेगा कि यात्रा का यह शौक यात्री गाडियो ने भी बढा दिया है। जहा दो-तीन यात्री गाडिया दिन भर मे पास करती थी, अब हाल यह है कि उन्ही पथो पर दस-बीस हो गयी हैं और उनके साथ-साथ रेल-मेल मे भी बढोत्तरी हुई है।

कहने का सार यह कि पहले जहा गावा-कस्बा मे दस पाच ही ऐसे सौभाग्यशाली होते थे जो काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि की यात्रा पर

निकलते थे, अब आलम यह कि गांवों कस्बों में दस-बीस ही ऐसे बदकिस्मत मिल जायेंगे, जो कहीं नहीं गये होंगे। वरना कानपुर, आगरा, बरेली, इलाहाबाद, लखनऊ, वाराणसी, दिल्ली आदि भी आज आम आदमी के लिए भी आम बात हो गयी है।

घूमने फिरने, खेल-तमाशा देखने, बच्चों की पढ़ाई को आगे बढ़ाने, इलाज कराने, अपने क्षेत्र के विधायक अथवा सांसद सदस्य से मिलने जुलने, मन बहलाने, खरीद फरोख्त करने, नयी सजावट देखकर चकाचौंध होने आदि कई ऐसे बहाने हैं, जो आज नगरों कस्बों गांवों से हजारों लोगों को महानगरों की ओर ले आते हैं। इसमें नौकरी करने अथवा काम काज ढूंढने वालों की संख्या भी काफी होती है।

हालांकि एक की जगह जहां पांच गाड़ियां हुई, तो दूसरी ओर पांच के पचास यात्री भी हुए। साधनों के साथ-साथ शौक और शौक के साथ-साथ कष्ट भी बढ़ते गये। लेकिन जिनके पास पैसा हो, उनके लिए कहीं कोई कष्ट नहीं। यानी कष्टों का संबंध भी खाली दामन के समान आम आदमी से ही है।

मेरे जीवन का भी अधिकांश समय इन्हीं गाड़ियों पर बीत रहा है, बीता और शायद भविष्य में भी बीतेगा, अतः जब कभी इन पर सवार रहता हूं तो सोच की धारा कहीं-न-कहीं से इनकी ओर भी मुड़ती है। अतः आज के चिन्तन में इनकी ही प्रधानता है।

मुझे गाड़ियों के इस सरित प्रवाह में जो सबसे अच्छी बात लगी, वह इनके नामकरण का सिलसिला और इसीलिए शुरू में ही मैंने कहा कि आजादी के बाद मूक क्रान्ति के समान ही यह नाम भी हुआ है। याद करें आजादी के पहले की गाड़ियों का नाम----कालकामेल, तूफान, देहरादून-एक्सप्रेस, मसूरीमेल, दिल्ली-हावड़ा, पंजाब-मेल, अपर इंडिया, आसाम मेल, बम्बई-मेल, बनारस-एक्सप्रेस, श्रीनगर मेल आदि-आदि। नामकरण की इस दरिद्रता पर अब हंसी आती है और मन खिन्न हो जाता है।

लेकिन अब जो नयी गाड़ियां चल रही हैं या चलाई जा रही हैं, उनके नाम से ही एक सिहरन, रोमांच, खुशी, उद्वेलन, आनंद और अनुराग की अनुभूति होने लगती है। गीतांजलि, ताज, काशी विश्वनाथ, गंगा-कावेरी,

डायमण्ड डेक्कन, संगम, अपर-मेल, विश्वमंगला, नीलाचल, मगध एक्सप्रेस, सर्वोदय, साबरमती, जयन्ती-जनता, मिथिला एक्सप्रेस आदि ऐसे नामकरण भारतीय रेलों के हाल फिलहाल में हुए हैं कि यात्रा कितनी भी त्रासदायक क्यों न हो, इनके नाम से एक फुरहरी दिल में हो जाती है। नयी ताजगी और सवेग।

तूफान से आप सफर कर रहे हों और उसकी चाल हो चींटी की तरह, तो मन को कितना कोफ्त होती है। वहीं दूसरी ओर जरा बैठ जायें गीतांजलि अथवा नीलाचल में, ताज में अथवा गंगा कावेरी में भावों और अनुरागों के बौने छौने मेघ खंड यों भी आपकी आखों की कोरों में झांकने लगेंगे।

ऐसी ही एक नयी गाडी, जो हाल फिलहाल शुरू हुई है 'प्रयागराज' उससे यात्रा का सुयोग मिला तो इलाहाबाद से दिल्ली के लिए सवार हो गया और उसमें ही बैठा यह सब लिख रहा हूं। सफर का सफर और तीर्थ-यात्रा की अनुभूति भी। जानकारी मिली कि 'सुपरफास्ट' गाडी है, शाम सवा नौ पर बैठिये इलाहाबाद में और सबेरे की चाय, सवेरे की खबरों के साथ सवा छ बजे दिल्ली में पीजिये।

वाह वाह मन खिल उठा। सुपरफास्ट है कि सुपरसानिक। तीर्थराज प्रयाग से बिना दक्षिणा अथवा चढ़ावा के चल देना भी पाप का भागी होना होता, आरक्षण के नाम पर पन्द्रह रुपयों की पैर-पूजा के बाद प्रक्षालन का सुख मिला।

डिब्बे में प्रवेश करते ही 'प्रथम ग्रासे मक्षिकापात' की अनुभूति हुई। गद्देदार बर्थ की जगह लकड़ी की पटरियां जैसे पुराने जमाने में हुआ करती थीं। शायद प्रयाग से चलने वाली इस गाडी में इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी हो कि भक्तों को कष्ट सहने की आदत नहीं रहेगी तो भगवान कैसे मिलेंगे।

कानपुर में गाडी क्या रुकी कि प्रयागराज के महाकुंभ की याद आ गयी। बेचारे टी०टी०, टी०सी० क्या करें, लक्ष्मीजी दौडी भागी चली आ रही हों तो उन्हें दुत्कारना कहां का न्याय होगा। और पुराणयोग के अनुसार

प्रयागराज की गाडी मे पण्डों और यजमानो का योग भी बैठता है। अत खुलकर और छटकर दक्षिणा, भेंट तथा नजराना का बाजार चला और डिब्बे की हालत यह कि बाथरूम भी किसी को जाने की जरूरत पड़े तो या तो वह दस-पाच लोगो के सिर शरीर पर पाव रखकर जाये अथवा कोई योग साधन म निपुणता प्राप्त हो तो स्वय अपना पाव अपने सिर पर रख ले।

अब रात का विश्लेषण दिन म काम आया। कहा प्रसन्न हो रहे थे काशी विश्वनाथ और 'प्रयागराज' जैसे नामों पर और यहा अब पछता रहे हैं उनके नामो के चलते पुण्यात्मा भक्तो की भक्ति पर। कब इससे त्राण मिल सकेगा आम यात्री को, यह भी एक अहम सवाल है।

गनीमत यही कि लगभग ठीक समय पर गाडी दिल्ली स्टेशन पर पहुच गयी और यहा सवेरे-सवेरे अखबारो पर जो नजर गयी तो मैं चौंकवा। पहला समाचार था—'उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री श्रीपति मिश्र का इस्तीफा—श्री नारायणदत्त तिवारी नये मुख्यमत्री होंगे।' समाचार के तफसील में गया, तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुख्यमत्री श्रीपति मिश्र ने राज्यपाल को जो इस्तीफा दिया, उस पत्र मे लिखा—'मुख्यमत्री पद का कामभार सभालने के लिए जितनी शारीरिक और मानसिक शक्ति लगती है उसके लायक मेरा स्वास्थ्य नही है।'

मानो मुख्यमत्री का पद भी किसी पहलवान के लायक है, ऐसी अनुभूति मुझे हुई। श्रीपति जी ने एक अहम सवाल खडा कर दिया जनता के सामने, इस पर गौर से विचार करने की जरूरत है और यदि सभव हो तो सविधान मे सशोधन की भी जरूरत है कि मुख्यमत्री या मत्री होने के लिए नागरिक-स्वरूपो के अतिरिक्त भी कुछ योग्यताओ की आवश्यकता है, जिसम मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रधानता मिले, क्योंकि देश के सबसे बड़े प्रान्त के मुख्यमत्री ने यह प्रश्न उपस्थित किया है।

॥

पहली बारिश की छिटकती बूदे

मन मे आया था कि उस लडकी का कान पकडकर उमेठ दू। छि ! छि ! इतना बडा होकर भी कोई इस प्रकार आसू बहाता है ! रह गयी तुम निरी की निरी देहातिन वही भोजपुरिया गाव की टिकुली सिलहोरे वाली लडकी। भला हिन्दी की इतनी बडी लेखिका, महिला कॉलिज का प्राध्यापिका और दो दो बच्चो की मा होकर भी अक्ल से कोई वास्ता नही। अरे, आजकल तो शादी के समय भी लडकिया टा-टा, बाइ-बाइ करती हुई पति के साथ चली जाती हैं। और तू रो रही है मानो पीहर छूट रहा हो। इतना कुछ कहने का मन किया, लेकिन मैं कुछ नही कह सका और न ही उससे आखें मिला सका, क्योकि मेरी आखो मे भी आसू आ गये थे।

यह शहर राची है। कभी अग्रेजो ने इसे प्यार से सहलाया-दुलराया था। ग्रीष्म की राजधानी बनाया था और लोग बाग दूर दराज से यहा अपनी थकान मिटाने और प्राकृतिक सुषमा से सौंदय-बोध ग्रहण करने आते थे, लेकिन आज वही राची न जाने किस अभिशप्त वरदान के गले मे बाहे डाले हुए है।

एच० ई० सी०, हिंदुस्तान स्टील मेकन और ऐसे ही अनेक महत्वपूण केंद्रीय और प्रातीय प्रतिष्ठानो और सस्थाओ को अपनी गोद मे लिए दिये रांची आज पथरा-सी गयी है।

विलगाव की ध्वनि

सही मायने मे राची आज कुछ विनाश की ओर अग्रसर है। न तो अब वह मदमाती हवा और न अब फुनगिया मे वैसी ललकायी। न आदिवासियो का वह जमघट और न ही मुडा उराव तथा सयाली सस्कृति की वह गूज।

न बारिद की वह अनदेखी पुकार और न ही मिट्टी की वह सोंधी गंध भीड़ भाड़, खरीद फरोख्त। मोल भाव। कहीं आक्रोश, तो कहीं विलगाव की ध्वनि।

और ईमानदारी की बात यह है कि यहां के सपने उनींदी आंखों की कोरों के निशान बनते जा रहे हैं, क्योंकि यहां जो नयी संस्कृति उदित हुई तथा जो चाकचिक्य पैदा हुआ, उसने यहां के वास्तविक सौंदर्य, संस्कृति, सहअस्तित्व और विश्वास, सब पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में भले ही किसी मंदिर का कलश न टूटा हो और किसी पुस्तकालय में आग न लगी हो, लेकिन अखंडित मूर्तियां भी खंडित भग्नावशेष बन गयीं, क्योंकि श्रद्धालुओं भक्तों की भीड़ ने अपने स्वार्थ को सर्वोपरि माना, आगे रखा तथा जिस संसार का निर्माण किया, वह वास्तविकताओं से दूर था। सही मायनों में जब कभी मैं यहां होता हूं, तो आज से बीस-तीस वर्ष पीछे की दुनिया में खो जाता हूं।

पिताजी कहा करते थे, 'जो रम्य नगरी है रांची, वहां सौंदर्य है भर-भरकर सांचा।' और अब आलम यह है कि रांची आना होता है तो मन करता है कि कैसे भागें। असह्य कोलाहल और ऐसे में भला इतनी बड़ी साधना तो है नहीं कि कह सकूं—'तुमुल कोलाहल कलह में, मैं हृदय की बात रे मन।'

कहां-से-कहां पहुंच गया और वह बात बीच-की बीच में ही टंगी रह गयी।'

पहली बूंद का अभिषेक

तो अब मूल विषय पर ही आता हूं। इस बार रांची कोई ऐसे-वैसे रास्ते से नहीं आया, बल्कि डालटेनगंज से नेतरहाट भयानक जंगल की राह आया और जब नेतरहाट पहुंचा तो मौसम की पहली बूंद ने हमारा अभिषेक किया और देखते-ही-देखते भयानक मूसलाधार बारिश में हम भीग भीगकर लथपथ हो गये। कहां पटना से जब चला था तो लू की लपटें गालों को झुलसा रही थीं और कहां अब यह आलम ने कभी-कभी दांतों को दांतों पर चढ़वा कर ही दम लिया

नेतरहाट पहले भी आया था, लेकिन ऐसी प्रकृति, जो मुक्त म आगे बढकर अपने को उन्मुक्त कर दे, इससे यहा पहली बार मुलाकात हो रही थी। और इतनी-सी ही बात नही, आज नेतरहाट की प्रतिष्ठा पलामू बगले ॥ सूर्योदय का दर्शन मात्र ही नही है, वरन् यहा के विद्यालय ने पूरे देश म बिहार की प्रतिष्ठा बढायी है। इस बार जब मैं नेतरहाट विद्यालय को नजदीक से देखने पहुचा तो वहा की आश्रम व्यवस्था तथा विद्यार्थियो की भारतीय सहजता देखकर मुग्ध हो गया।

आज की दुनिया म भी आश्रम, आश्रमाध्यक्ष, श्रीमान जी, माता जी आदि सबोधनो को सुनकर तथा उनकी व्यावहारिकता देखकर मन झूम उठा कि अभी भी भारत है और यह विश्वास भी बना कि भारत कभी भी समाप्त नही हो सकता। नेतरहाट विद्यालय ने यह साबित कर दिया है कि हिन्दी पद्धति से पढकर, आश्रमो मे रहकर, जगल की प्राकृतिक हवा-पानी का सेवन कर, अध्यापको को श्रीमान जी कहकर तथा प्रार्थना, विवेक और सस्कृति-सस्कार को आगे रखकर भी बडा बना जा सकता है।

स्वर्गीय जगदीशचद्र माथुर का लगाया यह बिरवा खर, यह भी मेरा मूल विषय नही था, अवातर ही फस गया, जिसे यही छोडकर अब सरपट भागता ॥।

'आज का दिन आप लोग मुझे दे दें', मैंने डॉ० शुक्ल से कहा। वे सकते मे आ गये। पहले ही वे कह चुके थे कि आज मेरे विभाग के कोई वरिष्ठ अधिकारी राजधानी से आने वाले हैं, उनके साथ ही मुझे रहना है, *लेकिन मेरे आग्रह को वे टालें तो कसे?*

अब मैं आऊ उस लडकी पर जिसे शुरू मे मैंने झिडका है। वह कोई और नही, बल्कि हिन्दी की उभरती हुई लेखिका डॉ० ऋता शुक्ल हैं जिन्होने चार पाच वर्षों मे ही अपनी हैसियत चर्चा योग्य बना ली है। तभी तो जब सबेरे सबेरे मैंने अपनी 'आंटी' श्रीमती चटर्जी से पूछा कि क्या आपके कॉलेज म कोई ऋता शुक्ल भी पढाती हैं तो वे अनायास बोली, 'आप उसे कसे जानते हैं? बहुत अच्छी लडकी है।'

'मैं उनसे मिलना चाहता हू, ऐसा न हो कि वे आज भी कालज चली जायें।' मैंने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की, तो आटी बोली—'भला वह क्यो

कॉलेज जाने लगी ! इन दिनो कॉलेज मे परीक्षाए चल रही हैं और हम लोग जो इन्विजिलेशन के लिए जा रहीं हैं, उन्हे बीस रुपये मिलते हैं। ऋता हमारी तरह मजदूर थोडे है ! वह है पक्की रईस ! जितनी देर यह सब करेगी, उतनी देर मे कोई कहानी लिख देगी, तो दो-तीन सौ रुपये आयेंगे और यश-प्रतिष्ठा अलग से।'

आटो को ही अपना मार्गदर्शक बनाकर मैं ऋता के दरवाजे पर पहुचा, तो वह क्षणमात्र के लिए भौंचक्की सी रह गयी। मैं ही हू या कोई दूसरा है ! सत्य है या सपना ? क्षण के दायरो मे विश्वास सिमट आये। व मुसकरा उठी। 'अभी तक मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि आप आये हैं।'

'तो मैं उस विश्वास को स्थिर करने के लिए क्या करू ?' स्वाभाविक रूप मे मैंने ठहाका लगाया। ऋता जी के दोनो बच्चे भी आ गये। 'बेटे, मामा आये है, पाव छुओ। कितना अच्छा लगता है मुझे बच्चो का पाव छूना !

तो आज का दिन मैंने पति पत्नी से माग लिया। दोनो बच्चे स्वाभाविक रूप से प्रसन्न हो गये। तब मैंने कृष्णकेतु को फोन किया, 'आज आप क्या कर रहे हैं ?'

'कुछ भी नहीं, आप आदेश तो दीजिए!' कितना समर्पित वाक्य सुनने को मिला !

'तो सीधे पहुचिए मेरे पास, महाराजा होटल म, दस मिनटो के अदर।' मैंने भी आदेश बुलेट की तरह ठोंक दिया।

जीप सरपट भागी जा रही है। सवार हैं हम उसमे तीन-तीन छह और दो आठ—ऋता, उनके दो बच्चे, बच्चो के पिता, कृष्णकेतु और मैं और मेरे साथ के रमे, अकलू भा और कृष्णा। चालक का स्थान मैं ग्रहण करता हू। बारिश हम छोडने के लिए तैयार नहीं है। मौसम की पहली हा बरसात हो रही है। धरती से सोंधी गध उठ रही है।

चार यात्राए चार कहानिया

'जानते हो, कृष्णकेतु, यह मैं चौथी बार हुडरू आया हू और हर बार की कोई-न-कोई कहानी है, मैं अब अपने को रोक नहीं पाता हू।

पहली बार आया था पिताजी के साथ। क्या गहमागहमी थी ! दो दो गाड़ियों पर रांची से हम दस-बारह लोग, कई सुप्रसिद्ध साहित्यकार।

उसी जमात में मेरे एक मामा जी भी थे। वे कभी इधर जायें, कभी उधर ! बहुत निरीक्षण-परीक्षण के बाद बाबूजी के पास जाकर खड़े हुए। 'ए कामता बाबू, हम लोग यहां क्या देखने आये हैं ?' उन्होंने कुछ आश्चर्य से पूछा।

पिताजी की जिन्दादिली मशहूर थी। उन्होंने मामाजी को नसीहत देनी शुरू की, 'देखते नहीं हैं यहां का सौंदर्य ? और यह हुडरू का फाल। कहीं भी यह दृश्य जल्द आपको देखने को नहीं मिलेगा।'

'इसीलिए लोग ठीक कहते हैं कि आप बेकार-बेकार में बहुत खर्च करते हैं। भला इतना पैसा खर्च कर यह हुदहुद गिरते पानी को केवल देखने आना कहां की बुद्धिमानी कही जायेगी ?'

मैंने जब यह वर्णन किया, तो शुक्ल जी, ऋता, बच्चे, कृष्णकेतु—सब लोट-पोट हो गये।

और दूसरी बार जब आया था, तो मेरे साथ वह महिला थी, जिसकी जिद मुझे यहां खींचकर ले आयी थी। उस समय हम बस से आये थे और खूब घूमे थे बेवजह ! यह भी पता नहीं चला था कि कितनी सीढ़ियां हम नीचे चले गये और फिर एक-दूसरे का हाथ पकड़े हंसते-हंसते हम कितनी सीढ़ियां एक सांस में ही चढ़ गये। उस समय सही मायनों में हुडरू का जलप्रपात स्वर्ग का एक टुकड़ा प्रतीत हुआ था।

तीसरी बार हम तब आये थे, जब कानन और मैं रांची में रहने आये थे तथा मेरा बड़ा लड़का रजू मात्र एक साल का था।

हम हुडरू घूम ही रहे थे कि सहसा कानन की कॉलेज की एक सहेली मिल गयी। सुरमई सी आंखें और उनमें अबोध सपने। रीति के अनुसार दोनों ने एक दूसरे का परिचय अपने अपने पतियों से कराया। मुझे अब तक याद है, उन्होंने मुझे देखा तो देखती ही रह गयी और मेरी पत्नी को एक ओर ले जाकर बोली—'कानन कहां से तुमने इतना सुंदर पति पा लिया है ? बाप रे, बाप ! जरूर तुमने लव मैरेज की होगी।' वे बुरी तरह मुझ पर लुब्ध थीं। उधर उनके पति को देखकर पहली नजर में ही यह

भान हुआ कि बेचारा कोई उचक्का है।

आज चौथी बार हुडरू आया हू। कितना अच्छा लग रहा है, मौसम की पहली बरसात और उसमे एक लब्ध प्रतिष्ठित कहानीकार साथ मे। 'लेकिन आप भले ही राची म रह रही हो, पहली बार मैं ही यहा लेकर आया हू। इसलिए मडम, यदि कुछ भी आप यहा के बारे मे लिखेंगी, तो कृपापूवक वह चेक मुझे इडोस कर देंगी।' मैंने हसते-हसते ऋता से कहा।

बादलो ने तब तक चारो ओर अपना सिक्का जमा लिया था। ऋता के बच्चे इधर उधर घूम रहे थे, डा० शुक्ल मुग्ध थे। ऋता अपने मे ही ताना-बाना बुन रही थी। कृष्णकेतु स्थानीय होने का दावा पसार रहे थे और चाय की निरथक तलाश मे अपने को उलझाये हुए थे। मैंने राची से चलते समय ही चुपके से कुछ खाने पीने की चीजें रख ली थी, उन्हे एक एक कर निकाल रहा था।

सपने-सी बनी उच्छृखल धारा

हुडरू को देखकर मैं जरा भी प्रसन्न नही हो रहा था। दस बीस वर्षो के अतराल मे ही इस प्रपात की शोभा नष्ट हो चुकी थी और समय-सदम के समान ही यह प्रपात भी बलात्कार का शिकार हो गया था।

दो-ढाई घटे बाद ही हमे लगने लगा कि अब नही लौटेंगे तो सुरक्षित नही हैं। कारण, भयानक बरसात के आसार दाए-बाए, सामने पीछे गहराने लगे थे। अत कहना पडा 'तो अब चला जाये।'

'आ जरूर गयी, लेकिन मन को सतोष थोडे हुआ है।' ऋता ने कहा और पहली बार मैं फूटा, 'चलो, यहा कोई सुभाष थोडे ही है।'

अब तो वातावरण ऐसा हुआ मानो बिन बादल के बरसात उतर आयी हो। ऋता खिलखिला पडी। सवेरे से आप यह भान करा रहे थे कि आपने मेरी कहानी देखी भी नही है और अब जाकर खुले हैं।'

मुझसे अब न रहा गया, तो मैंने निराला की पूरी कविता ही दी—'बाधो न नाव इस ठाव बधु, पूछेगा सारा गाव बधु।'

हुडरू से वापस आये तो शाम रात म परिणत हो चुकी थी। डॉ० जिद कर रहे थे, 'भाई साहब, आपको अब खाना खाकर ही

पड़ेगा।'

'डॉ० साहब, मैं अब चला, मुझे रातोरात पटना भाग जाना है। कल मुझे वहां रहना-ही रहना है।' मैंने अपनी मटरगश्ती पसारी।

'क्या कहते हैं! क्या रात मे इन दिनो चला जाता है!' ऋता कह रही थी। मेरे मन मे आया कहू, 'बहन, मुक्तकंठ आये तो पढ लेना, सितम्बर की सत्ताईस तारीख और जीवन का एक पन्ना।'

ना-न करते हुए भी बजका भूरी के साथ काफी की चुस्की ली और तब विदा। बरामदे से ज्यो बाहर हुआ ऋता ने पाव छू लिए, 'बेटे, मामा को प्रणाम करो।'

'यह क्या करती हो? इतनी बडी लडकी कहीं पाव छूती है? और मोना, तुमने क्यो पाव छुए? जानती नही है कि भाजी या भाजे के पाव छूने से मामा गरीब होते हैं?' मैंने चाहा कि इस बोलकर वातावरण को कुछ हलका बनाऊ। लेकिन सब बेकार! ऋता मुह घुमाकर रो रही थी, आखें पोंछ रही थी और उनके पति डॉक्टर साहब अलग भावुक हो उठे थे।

कल से ही मैं बारिश के झकोरों मे भीगता आ रहा था और आज तो न जाने कितने छीटे पड़े थे, लेकिन मुझे महसूस हुआ कि सब बेकार। बादलो के छीटो ने मुझे भिगोया जरूर था, लेकिन सम्मोहन नही किया था और ये ऋता स्वयं भीगकर बिना बरसे भी मुझे तर बतर कर रही थी। किसी तरह मैंने अपनी आखें चुरायी और मैं हाथ हिलाता हुआ विदा हो गया।

ठीक दस बजे रात मैंने राची की सरहद छोडी, तो रह-रहकर टिम टिमाता सा एक दीया मेरे अदर कही प्रज्वलित हो रहा था—जीवन मे एक दिन का विस्तार कही पूरे जीवन की परिधि को कसे समेट लेता है, उसका प्रमाण था आज का मेरा दिन!

□□



शकरदयाल सिह

वहुचर्चित लखक, निभिक पत्रकार और सुनय मजे कनमकार के रूप म शकर-दयालजी दश के हर पाठक क सामन अपनी शैली आर विधा के साथ विगत पद्रह-बीस वर्षों म आत रह ह ।

मूतियो का निहारना एक बात है और उनका गठन करना दूसरी बात वैस ही जसे किसी पक्षी का नीड निमाण और किसी बहलिय का उन नीडा म हाथ डालकर अडा या बच्चा की तलाश। शकरदयालजी एक एस लखक हैं, जो नीड-निमाण क साथ ही उसके सवन क प्रति भी सावधान रहत ह । यही कारण है, जो दश का हर प्रतिष्ठित पत्र इनकी रचना का आदर करता है और पाठक अपनापन दता है— उनकी निजता और पाठकीयता क कारण ।